सिद्धयोग

संस्थापक :
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

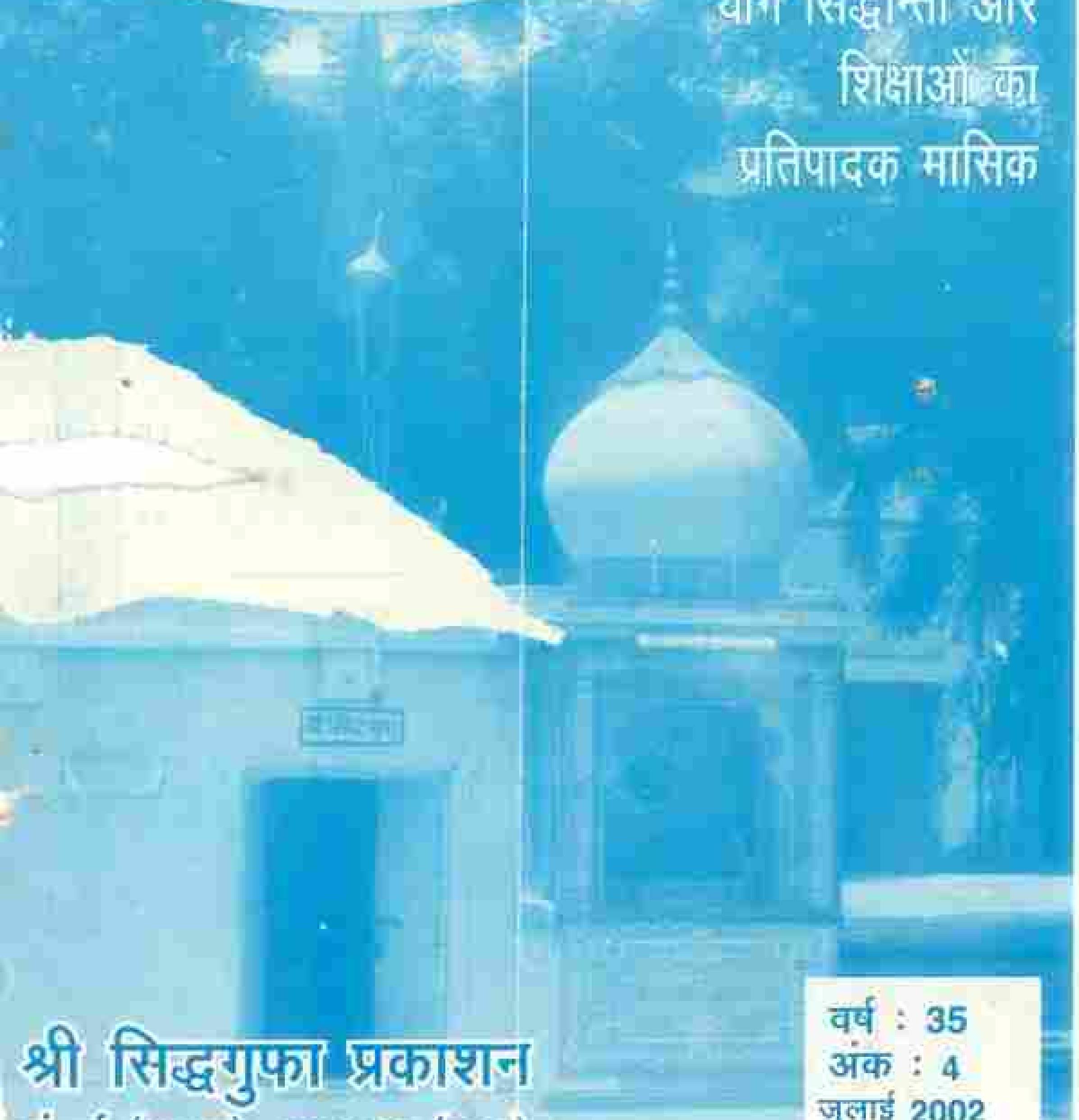

योग सिद्धान्तों और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 35
अंक : 4
जुलाई 2002

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा) - 283 202 (उ.प्र.)

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
डा० विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

एक प्रति	रु०	9-00
वार्षिक शुल्क	रु०	90-00
द्विवार्षिक	रु०	170-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

- अमृत कण 2
- भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय योगी (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 10
- श्री सद्गुरु महिमा
  प्रो० सुरेन्द्रबहादुर सिंह 12
- हंसयोग की चार अन्तर्भूमिकाएँ
  श्री मनोहरलालजी शर्मा 17
- स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते
  श्री मस्तरामबाबा के प्रवचन से ... 21
- अद्भुत कृपायें
  अवनीश भटनागर 28
- शिवभक्त पर अहैतुकी प्रभु कृ
  केशवदेव उपाध्याय 31
- पद
  भूपेन्द्र 'अंकुश' 38
- स्वास्थ्य चर्चा 39

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 35
अंक 4

जुलाई
2002

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

यो ब्राह्मणं विद्धाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमं आत्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुवै शरणमहं प्रपद्ये।।

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् ६/१८)

अर्थात्

जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और जो निश्चय ही उस ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्मज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मैं मोक्ष की इच्छा वाला साधक शरण रूप में ग्रहण करता हूँ। वे ही मुझे इस संसार बंधन से छुड़ाऐं।

अमृत कण

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
संतोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।

–मनु स्मृति

सुख चाहने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह परम संतोष को धारण करते हुए ही संयमपूर्वक आजीविका का पालन करे। सुख का मूल कारण संतोष है और दुःख का मूल कारण तृष्णा।

*   *   *

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः।।

–चरक संहिता

सुख देने वाली मति, सुखकारक वाणी और सुखकारक कर्म, अपने अधीन में रहने वाला मन और शुद्ध पाप रहित बुद्धि जिनके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तप एवं योग का अभ्यास करने में सदैव तत्पर रहते हैं, उन्हें शारीरिक एवं मानसिक रोग नहीं होते।

*   *   *

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्व संकल्पों का अभाव है वही कल्याण में हेतु कहा जाता है।

*   *   *

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ते कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगः।।

उद्यमी जन ही सफलता प्राप्त करते हैं, केवल मनोरथ करने से कार्यसिद्धि नहीं होती। जैसे सोये हुए सिंह के मुख में मृग (आहार) स्वयं प्रविष्ठ नहीं होता, उसे श्रम करना ही पड़ता है।

विशेष लेख

भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय योगी

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग का लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति है। कैवल्य का मतलब है केवली भाव। योग मार्ग में चलते हुये योगी को ताकतें तो मिलती है किन्तु इस रास्ते पर कौन चल सकेगा यह विचारणीय बात है। शास्त्रों में अधिकारी की बात लिखी है। जो मित भाषी हो, सदाचारी ब्रह्मचारी हो, गुरुदेव की आज्ञा को ही सब कुछ समझने वाला हो ऐसा व्यक्ति आगे बढ़ता है उसका कल्याण होता है। उसमें स्फुट प्रज्ञा लोक प्रकट होता है। देखो ! योग में चलने के लिये दो प्रकार की बात है। जो लोग जन्म जन्मान्तर के अभ्यासी हैं वह इस जन्म में भी संयोगवश स्वतः अभ्यास कर रहे हैं। किन्तु पूर्वकृत कर्म उनको मदद कर रहा है। पिछले जन्मों में समाधि लगाई है, ध्यान लगाया है इस जन्म में भी उनका ध्यान लग रहा है। दूसरे कुछ ऐसे लोग हैं जो कुछ करना चाहते हैं। भगवान ने गीता में कहा है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।

भगवान ने इस श्लोक में चार बातें बताई हैं। पहली बात मनुष्य को कर्म करने का ही अधिकार है। दूसरी बात है फल में मनुष्य का अधिकार नहीं है। तीसरी बात बताई है, कर्मफल का हेतु मत बनो ! तथा चौथी बात कही है कि तुम्हारा कर्म न करने में आसक्ति न हो ! अर्थात् कर्म करते रहो ! इसलिये आनन्द कन्द त्रिजगत पावन श्री कृष्ण चन्द्र की हम सबको आज्ञा है-कर्म करते रहो। परिणाम अवश्य सामने आयेगा। 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'। इसलिये जो लोग अभ्यासी हैं, साधना में बैठते हैं गुरुदेव की आज्ञा मान कर दृढ़ता से साधना में लगते हैं तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि तुम्हारी वह साधना और तपस्या काम आयेगी। गुरुदेव भी प्रसन्न होंगे-वे और भी नजदीक रहेंगे। इसलिये मनुष्य को अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके दृढ़ता के साथ साधना में लगे रहना चाहिये। शुभ कर्म करते रहने पर शुभ ही सामने आया करता है। अब योग कैसे आरम्भ होता है यह बताना चाहता हूँ। मैंने कई बार तुम्हें बताया होगा और तुम्हें याद भी होगा कि यह मनुष्य पुरुषार्थ तो करता रहता है किन्तु उसकी मति भेद के अनुसार वह कोशिश होती है। उपाय दो हैं कुछ आत्माओं को जन्म से ही ध्यान लगने लगता है। देवों के दर्शन आदि होते रहते हैं। क्यों होते हैं उन्हें जन्म से ? इसका एक कारण है। योगदर्शन इसका कारण बतलाता है-

"भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्"। अर्थात् विदेहानाम् देवानाम् प्रकृतिलयानाम् च योगिनाम् भव प्रत्ययो भवति। विदेह नाम के देवता और प्रकृतिलीन योगी को भव प्रत्यय होता है।

भव प्रत्यय होने से जन्म से ही ध्यान लगता है और दिव्यानुभूतियाँ होती हैं। उन्हें यह अनुभूतियाँ बिना साधना के ही होती है। भव प्रत्यय की श्रेणी में आने वाले योगियों की पूर्व भूमिका दो प्रकार की होती है। विदेह नामक देवता जब मनुष्य शरीर में आकार जन्म लेंगे तो ऐसे मनुष्यों को भव प्रत्यय होता है। दूसरे जो पूर्वजन्म में योगाभ्यासी थे और प्रकृति की साधना से गुजरते हुये ही उनका शरीर छूट गया वह योगी प्रकृतिलीन योगी कहलाते हैं। प्रकृतिलीन योगी की जन्म से ही योग प्रवृत्ति चल पड़ती है। विदेह देवता भी भव प्रत्यय वाले होते हैं। उनमें अणिमा, लघिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ स्वाभाविक होती हैं। देवताओं में क्या विशेषता होती है ? हम योग साधना से दूरदर्शन, दूर श्रवण आदि शक्तियों को प्राप्त करते हैं किन्तु उन्हें ये सिद्धियाँ स्वभाव से ही प्राप्त होती हैं। प्रकृतिलीन योगी प्रकृति में लयता प्राप्त योगी होते हैं। प्रकृति में भी बहुत आकर्षण है सूक्ष्म प्रकृति का आनन्द भी बहुत बड़ा आनन्द है जिस प्रकृति के सहारे हम ठठना चाहते हैं उसी में हम रह जायें ऐसी योगी प्रकृतिलीन होते हैं। मनुष्य पृथ्वी तत्व का ध्यान करता है गन्ध का साक्षात्कार कर लेता है। गन्ध तत्व में ही उसकी मूलाधार कमल में समाधि होती है। वह अनुभव करता है मैं ही गन्ध हूँ। मैंने तुम्हें कई बार अपनी गुरु बहिन पेड़ी देवी के विषय में बताया हुआ है। उसको गन्ध साक्षात्कार हो गया इसके परिणाम स्वरूप उनके शरीर से भी दिव्य गन्ध निकलती थी उसमें निर्माण चित्त की योग्यता भी थी। ऐसी स्थिति में यदि प्राण छूट जाता है तो वह गन्ध तन्मात्र में लीन प्रकृतिलीन योगी कहलाता है। इसी प्रकार से जो रस तन्मात्र का ध्यान करते हैं वह अपने को रसमय देखा करते हैं। इसी प्रकार से जो दिव्य रूप स्पर्श आदि तन्मात्राओं का साक्षात्कार करता हुआ शरीर छोड़ता है वह प्रकृतिलीन योगी कहलाता है। योगी जब इन तन्मात्राओं के दिव्य आनन्द में लीन रहता है तो वह इस स्थिति से हटना नहीं चाहता। इन पञ्च तन्मात्राओं में लीन हुआ योगी प्रकृति के दिव्य आनन्द को ही ब्रह्मानन्द मान बैठता है। वह समझता है। **"प्राप्तं प्रापणीयम्"** जो कुछ प्राप्त करना था वह मैंने प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार से **"कैवल्यपदमिव अनुभवन्तः"** कैवल्य जैसा आनन्द का अनुभव करता हुआ शरीर छोड़ता है तो वह विदेह नामक देवत्व को प्राप्त होता है वहाँ वह लाखों वर्षों तक आनन्द की स्थिति में रहता है। क्योंकि उन्हें अभी आत्म साक्षात्कार हुआ नहीं है और चित्त साधिकार है इसलिये दोबारा जन्म लेना पड़ता है। ऐसे प्रकृतिलीन योगी तथा विदेह नामक देवता पूर्व देह को छोड़कर मनुष्य शरीर में पृथ्वी पर आते हैं तो वे भव प्रत्यय वाले योगी कहलाते हैं। भगवान् ने गीता में भव प्रत्यय वाले योगियों का संकेत किया है। अर्जुन ने प्रश्न किया महाराज ! जो योग सिद्धि को न पाकर बीच में ही पथभ्रष्ट हो जाते हैं या देहपात हो जाता है, उनकी क्या गति होती है ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह उभयतः भ्रष्ट हो जाता हो। इसका उत्तर देते हुये भगवान् ने कहा– अर्जुन ! कल्याण मार्ग पर चलने वाले किसी भी व्यक्ति की दुर्गति नहीं होती। योग भ्रष्ट व्यक्ति मानव शरीर को छोड़कर लम्बे समय तक स्वर्ग में वास करता है। फिर उसके पश्चात् पवित्र धनवानों के घर जन्म लेता है अथवा जो माता पिता योगी हैं उनके यहाँ जन्म ले लेता है। इस प्रकार के जन्म की प्राप्ति बड़ी मुश्किल से ही होती है। जन्म लेने के बाद पूर्व देह के योगज

संस्कारों से संयुक्त होकर फिर योगाभ्यास में लग जाता है। ऐसे व्यक्तियों को जन्म से ही दिव्यानुभूतियाँ होती हैं ! जो जीव स्वर्ग से मनुष्य लोक में आते हैं वह यहाँ भी बीमार नहीं होते। वहाँ पर पुण्य अवशेष रहता है। यहाँ आकर वे फिर पुण्य करने लग जाते हैं। इस प्रकार के मनुष्यों में अनेक दिव्य शक्तियाँ जन्मजात होती हैं। दूसरे प्रकार के योगी उपाय प्रत्यय वाले होते हैं। इस प्रकार के योगाभ्यासी प्रयत्नशील रहते हैं अर्थात् उपाय ही उनके ज्ञान का कारण बनता है। वह उस ज्ञान को ही लेकर उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं। ऐसे योगियों को उपाय प्रत्यय वाले योगी कहते हैं जन्म जन्मांतर के योगाभ्यासी को तो ताकतें आती हैं वह होती ही हैं किन्तु यहाँ मनुष्य शरीर में साधना करने वालों को भी ताकतें अवश्य मिला करती हैं। उनको दो प्रकार से शक्ति मिला करती है। या तो गुरुदेव के मुख से कोई उपदेश सुनकर साधक उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाये अथवा तप ब्रह्मचर्य व स्वाध्याय इतना दृढ़ हो जाये कि सिद्धों के दर्शन हो जायें। योगदर्शन का सिद्धान्त है **''स्वाध्यायदिष्ट देवता सम्प्रयोगः''** स्वाध्याय से इष्टदेव के दर्शन होते हैं। और सिद्ध लोग, ऋषि लोग भी दर्शन देकर कृपायें किया करते हैं। इष्ट देव की कृपा उन पर होती है जो जप स्वाध्याय करते हैं। जो करते ही कुछ नहीं है उनको क्या होगा ? इसलिये कहा है **''उपाय प्रत्ययो योगिनाम् भवति''** ऐसे योगी को अपने अभ्यास को बढ़ाते रहना चाहिये। पुण्य के फलस्वरूप योग मार्ग में मनुष्य आ पाता है। साधना करते-करते गुरुदेव की कृपा होती है और जो अपनी साधना करके गुरु कृपा पाकर आगे बढ़ जाता है। उस में भी प्रकृतिलीन योगियों की तरह ही शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं। जो उपाय प्रत्यय वाले योगी होते हैं। इनके लिये योग दर्शन में सिद्धान्त बताया है-**''श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञा पूर्वकमितरेषाम्''** उपाय प्रत्यय वालों के लिये श्रद्धा सबसे खास चीज है। देखो!

'यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ'

जिसकी परमात्मा में परम भक्ति है तथा वैसे ही भक्ति गुरुदेव के प्रति है तो उसे सब कुछ प्रकाशित हो जाया करता है। गुरुदेव के कन्ट्रोल में रह कर गुरु भक्ति पूर्वक जो साधना करता है तो गुरुदेव का हृदय तो ऐसा है कि वह अपने आप पिघलाता है अपने आप उस का काम कर दिया करते हैं कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मेरे बड़े भाई ब्र. गोपालानन्द जी में भी उत्कृष्ट गुरु भक्ति थी उसी से उन्हें सकल ज्ञान प्रकट हुआ। मुझे एक घटना याद आई। एक बार हम दोनों श्री वृन्दावन गये। वहाँ उन्होंने एक महात्मा को देखा। वह अन्तर्दृष्टि वाले महात्मा थे। ब्रह्मचारी जी ने मुझ से कहा-राधा कुण्ड में एक महात्मा हरिदास है। उनके पास चले जाओ। (अपने बारे में कुछ पूछने को कहा)। मैं महात्मा जी के पास गया। उन्होंने दूर से ही देखकर मुझ से कहा-तुम्हारे गुरु भाई गोपालानन्द जी ने तुम्हें मेरे पास भेजा है। उस महात्मा ने मुझ से कहा-तुम बड़ी जगह से आये हो। तुम क्या भोजन करोगे ? मेरा तो आज व्रत है- एकादशी है। मैंने कहा-महाराज ! मुझे भोजन नहीं करना है। मैं तो आप के दर्शन के लिये आया हूँ। उन्होंने कहा-तुम जिनके चरणों में रहते हो उनसे आगे कुछ नहीं है। तुम्हारे गुरुदेव तो स्वयं ब्रह्म हैं। उन्होंने कहा- कि तुम्हारे गुरु भाई गोपालानन्द अन्य गुरु भाईयों के द्वेष के कारण कहीं जाना चाहते हैं। उन्हें कहना कि गुरुदेव के चरणों में ही सब कुछ मिलेगा। वह कहां इधर-उधर न जायें। उन्हें यहीं सब कुछ मिलेगा।

यह थी उस महात्मा की दूरदर्शिता एवं अन्तर्यामिता। अस्तु ! मैं तुम्हें उपाय प्रत्यय की साधनाओं का उपदेश कर रहा था। उनमें सबसे पहली बात श्रद्धा की बताई थी। **श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः** चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है। श्रद्धा ही साधना का बल है। श्रद्धा से ही साधना में उत्साह बढ़ता है और उस उत्साह से स्मृति उपस्थित हो जाती है। स्मृति के उपस्थित होने पर प्रज्ञा विवेक प्रकट होता है। यही प्रज्ञा विवेक अज्ञान को दूर करता है। यह क्रम है उपाय प्रत्यय वाले योगी के तत्व ज्ञान की ओर बढ़ने का। यदि मनुष्य को सिद्धयोग का मार्ग मिल जाये तो काम सब प्रकार से सरल हो जाता है। किन्तु सिद्धानुकम्पा सब पर नहीं हो सकती। इतना पुण्य नहीं होता। पुण्यों का खजाना भरना भी कुछ कठिन सी बात है। देखो ! कठिन यूं है जैसे कोई व्यक्ति दान करता है वह साथ में ख्याति भी चाहता है। अमुक स्थान पर इतने कमरे बनवाये, इतना वहाँ दान किया, वहाँ हमारा अन्न क्षेत्र चल रहा है आदि-आदि बातें मनुष्य करता है। इसी आधार पर दुनियाँ का भला हो रहा है यह तो ठीक है किन्तु एक बात अवश्य हो जाती है उसकी जितनी बड़ाई की जाती है एक प्रकार से उसका पुण्य क्षीण हो जाता है। जो लोग अपना नाम व ख्याति नहीं चाहते, चुपचाप अपना काम करते रहते हैं तो उनका पुण्य संचित रहता है। उस पुण्य फल के परिणाम स्वरूप अदृष्ट फल के भोग कालान्तर में बन जाया करते हैं। पुण्य मनुष्य करता रहता है उसका फल कुछ साथ-साथ मिलता रहता है। कुछ का फल जन्म जन्मान्तर में स्वर्गादि लोक लोकान्तर में मिल जाया करता है। इस प्रकार से मनुष्य के पुण्य समाप्त होते रहते हैं। जिनका पुण्य बढ़ता है और बढ़ते-बढ़ते निष्काम हो जाये। (निष्काम होने का एक तरीका है। इस प्रकार से नहीं हो सकता मनुष्य यह कहे कि चलो जी ! हमें तो कुछ फल की इच्छा नहीं है। हमने तो कर दिया बस ! हमें इसका फल नहीं चाहिये। दस बीस जगह पर ऐसा कह दिया। ऐसा कहना भी एक प्रकार से श्लाघा ही है। इतनी ही कामना फल प्राप्ति के लिये काफी है। यह नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य अपनी श्लाघा नहीं चाहता हो हम सब अपनी श्लाघा चाहते हैं) मनुष्य कर्म करता चला जाये और अपने को योग ध्यान परायण बनाये रखे तो वह निष्काम कर्म की ओर बढ़ जाता है। वेद भगवान की आज्ञा है-**"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत् शतं समाः"**।

मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष की आयु तक जीने की इच्छा करे !

गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने साधकों के लिये कर्म की आवश्यकता को बताते हुये कहा है-

"आरुरुक्षो मुनर्योगं कर्म कारणमुच्यते
योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते"

अर्थात्! जो व्यक्ति योग मार्ग पर चलना चाहता है उसे कर्म करना चाहिये। कर्म ही उसके योग का कारण बनता है। किन्तु जो योगारुढ़ हो चुका है अर्थात् जिसका मन पूर्णतया समाहित हो चुका है उसके लिये मनोनिग्रह करना ही कर्तव्य है। साधना की गति की दृष्टि से योगी दो प्रकार के होते हैं एक होते हैं सद्यो मुक्ति वाले और दूसरे क्रम मुक्ति वाले। इनमें सद्यो मुक्ति वालों का सिद्धान्त यह रहता है कि वे कम से कम सम्प्रज्ञात समाधि की अस्मितानुगत से आगे बढ़ जाते हैं उनकी स्थिति बनती है-

भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व संशया:।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात् उस परावर ईश्वर के दर्शन हो जाने पर सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट हो जाता है और क्लेश कर्म आदि सब क्षय हो जाया करते हैं। मैंने तुम्हें पहले भी बताया है कि पृथ्वी मण्डल पर जितने भी योगी हैं वे कायदे के अनुसार साधन योग के ही अधिकारी होते हैं। साधन योग के अधिकारी धीरे-धीरे साधना करते-करते योग की पराकाष्ठा को प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ एक पुण्यात्मा ऐसे होते हैं जिनको सिद्धों के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं उनकी कृपा से गहरा शक्तिपात होता है और वे पूर्ण सिद्ध हो जाते हैं। किन्तु एक बात और समझने की है वृत्तियाँ चाहे अच्छी हो या बुरी वे पड़ी रहती हैं। योग दर्शन में **योगश्चित्त वृत्तिनिरोध:** कहकर योग की परिभाषा की है। अर्थात् चित्त वृत्तियों का पूर्ण निरोध ही योग है। जब यह स्थिति प्राप्त हो जाती है तो चित्त शक्ति जीवात्मा किस अवस्था में होती है ऐसा प्रश्न किया गया। इसका उत्तर देते हुये कहा गया है चित्त शक्ति यथा कैवल्यं चित्शक्ति जिस रूप में कैवल्य में होती है। अर्थात् यही कैवल्य का रूप होता है। संसार में जो योगाभ्यासी हैं उनका साधना से धीरे-धीरे उत्थान होता है। सिद्धयोग में सिद्ध कृपा से शीघ्र ही उत्थासन होता है। योगी को अपनी वृत्तियों को बदलने के लिये यम-नियम का पालन करना पड़ता है। हिमालय में खेचर सिद्ध रहा करते हैं। **"न क्षुधा न तृषा तस्य यो वेत्ति मुद्रां खेचरीम्"**

जो खेचरी मुद्रा के पारंगत हैं उन्हें भूख और प्यास नहीं लगती। हिमालय में जितने भी योगिराज हैं वे सब खेचर हैं और भूतजयी हैं। जिस तत्व को घटाना बढ़ाना चाहें घटाते बढ़ाते रहते हैं। वे खेचरी से अमृत पान करते हैं और समाधिस्थ रहा करते हैं। इस कारण से वे हजारों वर्षों तक समाधि में रहा करते हैं और निर्बीज तक पहुँच जाते हैं। इस प्रकार वे अपने स्वरूप में अवस्थित रहा करते हैं। इस प्रकार भिद्यते हृदय ग्रन्थि: के नियमानुसार वे हृदय ग्रन्थि अर्थात् अज्ञान ग्रन्थि का विभेदन करके जन्म मरण के चक्कर से परे हो जाया करते हैं उनका कर्म बन्धन क्षय हो जाया करता है। यह है संस्कार का काटना-संस्कार विच्छेद करना। इसलिये हिमालय के योगी यहाँ जिसको रख लेते हैं फिर उसे नीचे आने नहीं देते। उसे **'ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा'** बना देते हैं उस समय उसका कर्मबन्धन पूर्ण रूप से क्षय हो जाता है। कर्म बन्धन विच्छेदन के बाद ब्रह्मरन्ध्र से अपने प्राण को निकालते हैं इस प्रकार के योगी सद्यो मुक्ति वाले कहलाते हैं। दूसरे के योगी क्रम मुक्ति वाले होते हैं। वे अपने संस्कारों का भुगतान करके उन्हें काटते हैं। यह भुगतान दो प्रकार से होता है। जिनके साथ हमारा भाई बन्धु स्त्री-पुत्र के रूप में सम्बन्ध बनता है उनका हमारे अन्दर संस्कार है। हम उनका भुगतान करते हैं। उस भुगतान के भी कई तरीके हैं। कुछ योगी तो ऐसे हैं जो निर्माण चित्त बनाकर संस्कार काटते हैं। "निर्माणचित्तान्यस्मिता मात्रात्" जो योगी अस्मितानुगत समाधि में पहुँच जाते हैं वे अपने अनेकों चित्त बना सकते हैं। एक योगी समाधि में बैठ कर अपने हजारों चित्त बना सकता है और हजारों व्यक्तियों के साथ बात चीत आदि कर सकता है। उन चित्तों के द्वारा अपना संस्कार भुगतान कर लिया करता है। कुछ योगी इस प्रकार के हुआ करते हैं जो क्रम

मुक्ति वाले हैं वे जहाँ-जहाँ उनका संस्कार है उन संस्कारों का तन्वीकरण कर देते हैं उन्हें हल्का कर देते हैं। कुछ योगी अत्यधिक पुण्य वाले होते हैं वे अपना काय-निर्माण कर लोक लोकान्तरों में भी चले जाते हैं। वे एक शरीर से तो समाधि में ही बैठे हुये होते हैं किन्तु दूसरा शरीर बनाकर अपने कर्म विपाक को भोगते रहते हैं। मुझे एक अपनी घटना याद आई। एक बार हम हरिद्वार के सामने भगवती चण्डी के पहाड़ के पास एकान्तवास करने गये। मैं लगभग पाँच छः महीने वहाँ रहा। वहाँ एक साधु से मेरा परिचय हो गया। जेठ के महीने में एक शाम मेरे कन्धे पर एक बड़ा काला बिच्छू चढ़ गया उसने बिच्छू मेरे कन्धे पर चढ़ा देख लिया। घबराये स्वर से कहने लगा-महाराज ! बहुत बड़ा बिच्छू कन्धे पर चढ़ा है। मैंने धीरे से उसे हाथ से दूर फैंक दिया। इस घटना को देखकर वह कहने लगा। आप पर शंकर जी की बड़ी कृपा है नहीं तो यह बिच्छू काट ले तो आदमी बचता नहीं है। उस दिन के बाद वह मुझ से प्रेम मानने लगा। उसने मुझे यहाँ के जंगलों की बहुत सारी बातें बताईं। उसने बताया कि यहाँ से आठ मील की दूरी पर धर्म कुण्ड नाम का स्थान है वहाँ शंकर भी अपने बैल पर चढ़ कर आते हैं। वहाँ ४००-५०० वर्ष की आयु के साधु आते हैं वहाँ सिद्ध लोग कभी-कभी सत्संग करते हैं। वह कहने लगा-यहाँ से थोड़ी दूरी पर एक रोहतक का गंवार भी रहता है यहाँ तो समाधि में बैठा रहता है और स्वर्ग में जाकर देव कन्याओं के साथ नाचता है। यह भी वैसे सामर्थ्य की बात थी। काय निर्माण से स्वर्ग जाता था। अस्तु ! क्रम मुक्ति वाला योगी पहले इस लोक के संस्कारों का भुगतान करता है फिर इससे आगे, स्वर्ग, पितर आदि-आदि लोकों के संस्कारों को काटता है। आखिर संस्कारी तो हर जगह ही होते हैं। हमारे राम नारायण (नेता जी) का देहावसान हो गया है। अब वह स्वर्ग वासी है अब उनका संस्कार वहाँ का बनेगा। श्री प्रभु जी के बारे में भी तुम्हारे विचार बनते होंगे। वे काय निर्माण से ही नैपाल से आये और काय निर्माण से ही चले गये। सद्योमुक्ति वाले योगी बराबर समाधि में बैठे रहते हैं और निर्बीज समाधि तक पहुँच जाया करते हैं। ऐसी अवस्था के अन्दर उनके कर्म विपाक और कर्माशय समाप्त हो जाया करते हैं। क्रम मुक्ति वाले योगियों का लक्ष्य संस्कार भुगतान का रहता है और वे देख लेते हैं कि हमारे कौन-कौन से संस्कारी कहाँ-कहाँ पर हैं। किस के साथ हमारा कैसा-कैसा सम्बन्ध है। कौन किस लोक में है। इस प्रकार जान कर उन संस्कारों का भुगतान कर लिया करते हैं। उनके कर्म भुगतान के दो तरीके मैंने तुम्हें समझाये हैं। एक तो यह कि काय-निर्माण बनाकर जिस-जिस से संस्कार है उनके पास चित्त चला जाये जैसा-जैसा संस्कारक है वैसा भुगतान कर ले। दूसरा बताया था वे लोग यदि कोई प्रबल संस्कार होता है उसमें वे काय-निर्माण कर लेते हैं। एक शरीर जहाँ है वहीं रहता है दूसरे शरीरों से देवलोक या अन्य कहीं भी जाकर काय-निर्माण से संस्कार भोग लिया करते हैं। मैंने तुम्हें यह बात पहले कई बार समझाई थी कि **"अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्"** अर्थात् शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का फल भोगना पड़ता है यह निश्चित बात है। मेरे बड़े गुरु भाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी लोक लोकान्तर जाकर ऋषि मुनियों योगियों से गुण ले लिया करते थे। यह सब वे समाधि के बल से करते थे। किसी के अन्तर्गुण जानने के दो तरीके होते हैं। एक तरीके से तो यह है कि उनके सूक्ष्म शरीर का आकर्षण करें। सूक्ष्म शरीर सामने आने पर सारे

तथ्य यथार्थ में कह देता है। यदि सूक्ष्म शरीर का आकर्षण न हो सके तो उस हालत में उनके मन में मन बुद्धि में बुद्धि विलीन कर दें ऐसा करने पर उनके मन में जो विचार होंगे उसके मन में भी आने लगेंगे। ऋषिकेश में झाड़ियों में केशवानन्द अवधूत जल के अन्दर खड़े होकर घण्टों मन्त्र जाप किया करते थे। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी उनसे वह मन्त्र प्राप्त करना चाहते थे इसलिये पहले तो उन्होंने उनके सूक्ष्म शरीर को खींचना चाहा। किन्तु वे इसमें सफल नहीं हुये। इसके बाद उन्होंने उसके मन में मन, बुद्धि में बुद्धि मिलाकर मन्त्र को जानना चाहा किन्तु क्योंकि वे शक्ति सम्पन्न महात्मा थे उन्होंने इनके सूक्ष्म शरीर को अपने में घुसने ही नहीं दिया। दोनों प्रकार के उपाय करने के बाद उन्होंने स्थूल रूप से मन्त्र लेना चाहा ! स्वामी जी ने मन्त्र लिख कर देते हुये कहा यदि एक बार भी इसे जप लेगा तेरी सारी ध्यान की पूँजी समाप्त हो जायेगी। ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी ने उस कागज को फाड़कर फेंक दिया। मेरे सामने की बात है। इसी प्रकार से एक बार सिद्ध लोक में श्री गुरु नानकदेव के दर्शन किये। वहाँ उनसे बलाकर्षणी विद्या सीखी। उन्होंने कहा था कि अपने गुरुदेव से आज्ञा लेकर इसका अभ्यास करना। विद्या भूल न जाऊँ इसलिये इन्होंने इसी उत्सुकता में जल्दी-जल्दी में उस प्राणायाम का अभ्यास कर लिया। परिणाम स्वरूप उनका शरीर फटने लगा। रोते-रोते श्री प्रभु जी के पास गये और कहने लगे-''प्रभु जी ! पता नहीं यह क्या हो गया है। शरीर फटने लगा है''। इस पर श्री प्रभु जी कहा-गोपालानन्द ! ऐसा मालूम पड़ता है कि बलाकर्षणी प्राणायाम तुमने किया है। इस विद्या के जानकार तो गुरुनानक देव हैं तुम उनसे इसके बारे में पूछ लो ! गोपालानन्द जी कहने लगे-प्रभु जी ! यह मैंने उन्हीं से सीखा था किन्तु उन्होंने आप से पूछ कर करने को कहा था। मैंने आप से बिना पूछे ही इसे कर डाला है अब आप मुझे क्षमा करें। श्री प्रभु जी ने मुझे और मुरादाबाद के एक लड़के कैलाश को उनके शरीर पर कपूर और सिरके की मालिश करने की आज्ञा दी। दो तीन दिन बाद उनका फूला हुआ शरीर ठीक हो पाया। मेरे कहने का अभिप्राय एक ही है कि ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी अपने ध्यान के बल से सिद्धों से गुण व विद्या लिया करते थे। अस्तु ! इस प्रकार से मैंने भव प्रत्यय वाले तथा उपाय प्रत्यय वाले योगियों का वर्णन किया है। प्रायः उपाय प्रत्यय वाले योगी ही सब हुआ करते हैं। इसलिये तुम सब श्री प्रभु जी के स्वरूप के सामने बैठ कर ध्यानाभ्यास में बैठ जाया करो। चाहे किसी ने दीक्षा ली है या नहीं उनके चरणों में बैठकर जो जपोगे मन्त्र ही हो जायेगा। श्री प्रभु जी परात्पर तत्व हैं, नित्य तत्व हैं। वे अब भी नैपाल में हैं। हम एक बार नैपाल काठमाण्डू गये थे। वहाँ एक साधु हमारे पास आया था प्रसाद माँगने के लिये। वह कहता था। कल मुझे प्रभु जी योगवनी में मिले थे। छः सात सिद्ध और उनके साथ थे उन्होंने अपना चरण छूने नहीं दिया। उन्होंने कहा- ''हमारा बच्चा चन्द्र मोहन काठमाण्डू में गौशाला में ठहरा हुआ है तुम जाकर उससे प्रसाद लो ! तुम्हारा काम हो जावेगा।'' हमने उस महात्मा को पुष्प प्रसाद दिया तथा वह महात्मा ''हो गया मेरा काम-हो गया मेरा काम'' कहते हुए खुश होता हुआ चला गया। इसलिये ''नास्ति तत्वं गुरोः परम्'' गुरुदेव से आगे कोई नहीं है। प्रभु जी ने आकर हमको परा विद्या दी है। इसलिये मन लगाकर ध्यानाभ्यास में बैठा करो। जो प्रयत्न करेंगे श्री प्रभु जी उनकी अवश्य ही सहायता करेंगे। बस ! सभी को बार-बार आशीर्वाद। ※※※

तरति शोकमात्मवित्

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

उपनिषद् की यह घोषणा है कि आत्मवित् अर्थात् आत्मज्ञानी शोक से पार हो जाता है। कोई भी व्यक्ति जब तक आत्मवेत्ता नहीं हो जाता उसके रोग-शोक दूर नहीं हो सकते। आत्मवित् होने के लिये व्यक्ति को पहले योगवित् होना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि आत्मज्ञान को पाने का साधन योग ही है। उपनिषदों में इस बात का स्पष्ट निर्देश है कि अन्त:करण में स्थित उस देव के जो मतिमान देखते हैं उन्हें ही नित्यसुख की प्राप्ति होती है औरों को नहीं। **'तमात्मस्थं येऽनुपश्यति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्'**। दर्शन शास्त्र में ऋषियों के द्वारा प्रारम्भ से ही जगत के करण, काल, स्वभावादि विषयों पर विचार होता रहा है। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में एक प्रसंग आता है जिसके अनुसार कुछ ब्रह्मचारी ऋषि आपस में मिलकर कुछ बिन्दुओं पर विचार करते हैं कि जगत का कारण क्या है ? हम कहाँ से उत्पन्न हुये हैं, किसके द्वारा हम जीवन धारण करते हैं ? हमारा आधार कौन है ? जीव किसकी प्रेरणा से सुख-दु:ख भोग करता है आदि-आदि। वस्तुत: ये कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिन पर सभी दार्शनिकों ने विचार किया है और अपने ढंग से समाधान ढूँढा है। किन्तु विचार विनिमय से सर्वमान्य व समीचीन उत्तर नहीं मिला। अन्त में वे सब ध्यान योग में स्थित हो गये और उन्हें सभी प्रश्नों का उत्तर मिल गया। उन्होंने अपरोक्षानुभूति से तत्व-दर्शन कर लिया और पाया कि जड़-चेतन दोनों से परे इनका अधिष्ठान एक देव है वही अपनी माया शक्ति से संसार का निमित्तोपादान कारण है उस देव का साक्षात्कार होने पर जीव माया के चक्र से मुक्त हो सकता है। उस देव को कहीं अन्यत्र ढूँढने की आवश्यकता नहीं है वह अपने अन्त:करण में स्थित है। आत्मदेव से भिन्न कोई देव नहीं है। उस देव के साक्षात्कार के लिये चित्त शुद्धि आवश्यक है। चित्त शुद्धि के क्रम में पहले वेदाध्ययन फिर यज्ञानुष्ठान फिर कर्म सन्यास और उससे ज्ञानित्व की प्राप्ति होती है। इस प्रकार योगी क्रमश: मुक्ति लाभ करता है। जिस प्रकार मलिन दर्पण में अपना रूप नहीं देखा जा सकता उसी प्रकार जिसका अन्त:करण वासना रहित नहीं है वह आत्मज्ञान को प्राप्त करने की योग्यता नहीं रखता, क्लेश ही वासनादि के जनक हैं। क्लेश ही शोक है। क्लेशों के नष्ट हो जाने पर योगी शोक से पार हो जाता है। जीव को क्लेश मुक्त करना ही योग शास्त्र का लक्ष्य है। जब तक स्वरूप स्थिति नहीं तब तक क्लेश बने ही रहते हैं। स्वरूप स्थिति होने पर **'तत: क्लेश निवृत्ति:'** के सिद्धान्तानुसार योगी पूर्णतया क्लेशों से मुक्त हो जाता है। असम्प्रज्ञात समाधि में ही अद्वैत की स्थिति बनती है। द्वैत ही संसार है। द्वैत ही आवागमन का कारण बनता है। जब तक जीव अपने को तथा अन्य जीवों को परमात्मा से भिन्न देखता है तब तक वह अपने कर्मों द्वारा मोहित होकर संसार में भटकता रहता है। समाधि के दीर्घकालिक अभ्यास से जब योगी के समस्त कर्म

क्षीण हो जाते हैं तब वह अपने को परमात्मा से अभिन्न देखता है और पूर्णतया शुद्ध हो जाने के कारण वह अक्षय हो जाता है। अविद्या के रहते कर्म एवं कर्मफल रहते हैं। इसके नाश से कर्म संस्कार स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। अद्वैत तत्व में मैं-मेरा, तू-तेरा आदि से रहित निर्विकल्प, निर्विकार रूप शेष रहता है। द्वैत मनोवृत्ति रूप है। परमार्थत: तो अद्वैत ही है। इसलिये धर्माधर्म रूप निमित के कारण उत्पन्न हुई मन की वृत्तियों का निरोध करना चाहिये। उनके विरुद्ध हो जाने पर फिर द्वैत की सिद्धि नहीं रहती। अद्वैत ही केवली अथवा कैवल्य मोक्ष है। इसलिये योगी को चाहिये कि संसार को दुःख स्वरूप समझकर शोक एवं क्लेश के उच्छेदन के लिये योग मार्ग का अवलम्ब लेकर मुक्ति के लिये प्रयत्नशील रह कर साधना में लगा रहे। योग मार्ग ही मनुष्य को सब प्रकार से कृतकार्य बना सकता है। योग के महत्व को उपनिषदों में इस प्रकार से वर्णित किया है-

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा
धर्मज्ञो जितेन्द्रियः ।।
बिना योगेन न देवोऽपि
मोक्षं लभते क्वचित्।।

अर्थात् कितना ही ज्ञान निष्ट हो, वैराग्य सम्पन्न हो, धर्म को जानने वाला हो, जितेन्द्रिय हो, योग के बिना मनुष्य तो क्या देवता भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

***

विश्व के सभी महान् धर्मों की प्रथम समानता यह है कि सब का एक-एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। जिन धर्मों के पास ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं रहा वे लुप्त हो गये। मिस्र के धर्मों की यही गति हुई। इसे हम यों कह सकते हैं कि प्रत्येक महान् धर्म का प्रामाणिक ग्रन्थ अग्निकुण्ड का वह पत्थर है, जिसके चतुर्दिक उस धर्म के अनुयायी एकत्र होते हैं और उससे उक्त धर्म की शक्ति एवं संजीवनी विकीर्ण होती है।

—स्वामी विवेकानन्द

श्री सद्गुरु महिमा

लेखक--प्रो० सुरेन्द्रबहादुर सिंह

परम योग योगेश्वर अखिल लोक पावन प्रभु श्री चन्द्रमोहनजी महाराज की शरण में आने से पहले जब किसी विद्वान पुरुष या महात्मा के मुख से श्री गुरु महिमा के वाक्य सुनने को मिलते तो मुझे उन वाक्यों में अत्युक्तियाँ दीख पड़ती और अर्थवाद भासने लगता। ऐसे महात्माओं से मैं वाद-विवाद करने में जरा भी संकोच न करता और अन्त में अपने को ही विजयी मानकर उनसे दूर हट जाता। किन्तु एक महात्मा के द्वारा कही गई यह बात-''जब सच्चे गुरुदेव मिल जाते हैं तो बिना तर्क-वितर्क किये ही उनके चरणों में सिर स्वतः झुक जाता है।'' आज भी मेरी स्मृति ताजी बनी हुई है। ठीक यही बात मुझे देखने को भी मिली, किन्तु मैं उसको यहाँ लिखना नहीं चाहता। जब से श्री प्रभु जी ने अपना कृपामय वरदहस्त मेरे सिर पर रखा तब से मेरे मन में श्री गुरुदेव के गुण-गान की प्रेरणा उत्पन्न हुई और मैं श्री प्रभु-प्रदत्त भावों को अपनी टूटी-फूटी भाषा में गुनगुनाने लगा। इस प्रकार कछवा मण्डल भी प्रभु जी ने बनवा दिया। उक्त मण्डल द्वारा गाये जाने वाले संकीर्तनों में वर्णित श्री गुरुदेव की महिमा को सुनकर कुछ लोगों ने श्री गुरु महिमा से-अपरिचित होने के कारण, या व्यंग से समय-समय पर इस प्रकार प्रश्न किये-भाई, कीर्तन तो भगवान का किया जाता है, गुरु का नहीं। अतः आप लोग गुरुदेव का कीर्तन क्यों करते हैं ? भक्ति तो भगवान की की जाती है, आप लोग गुरु भक्ति की बातें क्यों करते हैं गुरुदेव तो भगवत् प्राप्ति के साधन हैं साध्य नहीं फिर गुरुदेव की पूजा भगवान के समान क्यों करते हैं ? ये शंकायें ऐसी हैं जो प्रायः बहुत से लोगों के मनो में उठा करती हैं अतः इन शंकाओं के परिहार्य शास्त्रों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं-

''श्री गुरुदेव एवं ईश्वर में अभेद तथा गुरुभक्ति-

श्री गुरुदेव और ईश्वर में भेद-बुद्धि रखने वाले को ईश्वर का अनुग्रह कभी प्राप्त नहीं होता। श्री शंकराचार्य जी ने अपने ''सर्व वेदान्त-सिद्धान्त सार संग्रह में लिखा है-

शिव एवं गुरु स्साक्षात गुरुदेव शिवम् स्वयं।
उभयोरन्तर किंचिन्न दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः।।

अर्थात् शिव ही साक्षात् गुरु हैं और गुरु ही स्वयं शिव है। मोक्ष की कामना रखने वाले को चाहिए कि दोनों में भेद कभी न देखें।

ईश्वर तथा गुरु में अभेद दिखलाते हुए भगवान पतंजलि योग सूत्र में लिखते हैं-

''न पूर्वेयामतिगुराः कालेन अवच्छेदात्।''

ब्रह्म विद्योपनिषद् में लिखा हैः-

''गुरुरेव हरिः साक्षात् नान्य इत्य ब्रवीत् श्रुतिः''

अर्थात् गुरु ही साक्षात् हरि है। अन्य नहीं ऐसा वेद कहते हैं।

योग शिखोपनिषद् में लिखा है-

जो गुरु है वही ईश्वर है जो ईश्वर है वही गुरु है। अतः गुरु को ईश्वर समझ कर उत्कृष्ट भक्ति के साथ उसका पूजन करना चाहिये। दोनों में कोई भेद नहीं है।

ज्ञान, भोग, भक्ति, कर्म आदि किसी भी मार्ग का अवलम्ब लेकर अपने चरम लक्ष्य को जो प्राप्त करना चाहता है। उसे श्री गुरु भक्ति अवश्य अपनानी चाहिए। इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कुलार्णव तन्त्र में लिखा है-

भोग मोक्षार्थिनां ब्रह्म विष्णवीश पदकांक्षिणाम्।
भक्तिरेव गुरु देवि नान्य पन्था इति श्रुतिः।।
स शिवो गुरु रूपेण मुक्ति मुक्ति प्रदो मम।
इति भक्त्या स्मरेद्यस्तु तस्य सिद्धर दूरतः।।

अर्थात्-हे देवी, भोग तथा मोक्ष की इच्छा रखने वालों को और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का पद प्राप्त करने की कामना रखने वालों को श्रीगुरु-भक्ति ही एक मात्र उपाय है दूसरा मार्ग नहीं, ऐसा वेदों का कहना है। वह शिव गुरु के रूप में मुझे भोग और मोक्ष प्रदान करेंगे। ऐसा जानकर जो भक्ति सहित श्री गुरुदेव का स्मरण करे तो उसके लिए सिद्धि दूर नहीं।

जिस शिष्य में गुरु-भक्ति नहीं वह आत्म तत्व के प्रकाश से सर्वथा वंचित रह जाता है। गुरु-भक्ति-हीन शिष्य श्री सद्गुरु द्वारा शक्तिपात होने पर भी परम शान्ति की प्राप्ति से वंचित रह जाता है। यह बात बिल्कुल सत्य है कि जब तक शक्ति-सम्पन्न सद्गुरु शक्ति पात नहीं करते तब तक मनुष्य के लिए चरम आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने का दरवाजा बन्द रहता है। शक्तिपात द्वारा ही कुण्डलिनी शक्ति जागती है और उसके जागने से अखिल ब्रह्माण्ड जाग उठता है। योग-शिखोपनिषद में लिखा है-

आधार शक्ति निद्रायां विश्वं भवति निद्रया।
तस्यां शक्ति प्रबोधेन त्रैलोक्यं पुतिबुध्यते।।

अर्थात् जब तक मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति सोई पड़ी है तब तक सारा विश्व सोया रहता है उसके जागने से सभी जाग्रत हो उठते हैं।

गंधर्वतन्त्र तथा गौतमीय तन्त्र में लिखा है-

मूल पद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् चिञ्चिन्न सिध्येत मंत्र यंत्रार्चनादिकम्।।

अर्थात्-जब तक मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है तब तक मन्त्र यन्त्र अर्चना आदि सफल नहीं हो सकते। अतः उसे जगाने के लिए श्री गुरुदेव के पाद-पद्मों की शरण लेनी ही पड़ेगी।

'तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरु-पादं समाश्रयेतु'। जब तक श्री गुरुदेव शक्ति संचार नहीं करते तब तक सिद्धि पाना असम्भव है। कुलारर्णव तन्त्र में लिखा है-

शक्ति पातानु स्मरेणा शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
यत्र शक्तिर्न पतति तत्र सिद्धिर्न जायते।।

अर्थात् शक्तिपात द्वारा ही शिष्य गुरु की कृपा प्राप्त करने के योग्य होता है। जब तक शक्ति संचार नहीं होता तब तक सिद्धि पाना असम्भव है।

श्री गुरुदेव की भक्ति द्वारा ही आत्म तत्व प्रकाशित होता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है-

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवै तथा गुरो।
यस्यैते कथिताह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।

अर्थात् जिसकी परमात्मा में पराभक्ति है उसी महात्मा में परमात्मा तत्व प्रकाशित होता है।

गंधर्व तन्त्र में लिखा है-

यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये।
तस्य सर्वार्थ-सिद्धि: स्यान्नान्यथा खलु पार्वति।

अर्थात्-हे प्रिये पार्वती। जिसको श्री गुरुदेव में ईश्वर के समान सर्वदा भक्ति रहती है, उसके समस्त उद्देश्य सिद्ध होते हैं। सर्वार्थ-सिद्धि का इससे भिन्न कोई उपाय नहीं है।

श्री गुरुदेव को मनुष्य के रूप में देखना वर्जित करता हुआ कुलार्णव तन्त्र कहता है-

श्री गुरुं प्राकृते: सार्द्ध ये स्मरन्ति वदन्तिवा।
तेषां हि सुकृतं सर्वं पातकं भवति प्रिये।।

जो लोग श्री गुरुदेव को साधारण मनुष्य के समान मानकर उनका स्मरण या कथन करते हैं उनके सारे पुण्य पाप में बदल जाते हैं-

नरवद्ध दर्शयते लोके श्री गुरु: पाप करमणा।
शिववद्ध दृश्यते लोके भवानी पुन्य करमणा।।
श्री गुरु: परम तत्वं तीष्ठते चक्षुरग्रत:।
मदं भाग्यां पश्यन्ति हन्त्रान्ध: सूर्यमि बोधितम्।।

जिनका चित्त पाप से कलुषित है, उनको श्री गुरुदेव मनुष्य के समान दिखायी पड़ते हैं, और जिनका चित्त पुण्य कर्मों के द्वारा शुद्ध हो गया है, वे श्री गुरुदेव को साक्षात् शिव स्वरूप देखते हैं। जिस प्रकार अन्धा मनुष्य उदित सूर्य को नहीं देख सकता, उसी प्रकार मन्द भाग्य मनुष्य अपनी आँखों के सामने उपस्थित रहने पर भी परम तत्व रूप श्री गुरुदेव को नहीं देख पाता।

गुरो मानुष बुद्धिं च मन्त्रे चाक्षर बुद्धिकम्।
प्रतिमासु शिला-बुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्।।

जो मनुष्य श्री गुरुदेव में मनुष्य बुद्धि रखता है, मन्त्र में अक्षर बुद्धि रखता है और प्रतिमा में पत्थर बुद्धि रखता है वह नरक में जाता है।

इसी प्रकार की चेतावनी श्री शारदा तिलक की टीका में भी दी गई है-

गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्यतु।
कदापि न भवेत सिद्धिर्न पूजनैः।।

अर्थात् श्री गुरुदेव में कभी मर्त्य अर्थात् मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिए। जो श्री गुरुदेव को मनुष्य समझता है, उसको मन्त्र के जप और देवताओं के पूजन से भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

ईश्वर ही गुरुदेव के रूप में आते हैं। अतः ईश्वर और गुरु में कोई भेद नहीं। श्री शंकराचार्य जी ने सर्व वेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह में लिखा है-

जन्मानेक शतैः सदाचार
युजा भक्त्या समाराधितो।
भक्तै वैदिक लक्षणेन विधिना,
सन्तुष्ट ईशः स्वयम्।।
साक्षात् श्री गुरु रूपमेत्य,
कृपया दृग्गोचरः सन् प्रभुः।
तत्वं साधु विबोध्या तारयति,
तान् संसार दुःखार्णवात्।।

अर्थात् सैकड़ों जन्मों में सदाचार युक्त भक्ति द्वारा तथा वैदिक कर्मों के अनुष्ठान द्वारा ईश्वर की आराधना करने पर भगवान सन्तुष्ट होकर स्वयं साक्षात् गुरु के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं और उसको तत्व का बोध कराकर इस संसार रूपी दुःख सागर से उद्धार कर देते हैं।

कुलार्णव तन्त्र में लिखा है-

सर्वानुग्रह कर्तृत्वादीश्वरः करूणानिधिः।
आचार्यरूप मास्थाय दीक्षया मोक्ष येत्पशून्।।

अर्थात् ईश्वर सब प्रकार अनुग्रह कर सकता है, अतः वह करुणा निधान परमेश्वर गुरु का रूप धारण करके दीक्षा द्वारा जीवों को मोक्ष प्रदान करता है।

मनुस्मृति में लिखा है-

इस लोक मातृ भक्त्या पितृ भक्त्यातु मध्यमम्।
गुरु शुश्रुषया त्वेवं ब्रह्म लोक यामुश्नुते।।

अर्थात् मातृ भक्ति से इस लोक की, पितृ भक्ति से मध्य लोक की तथा गुरू की सेवा से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।

गुरूमूलाः क्रियाः सर्वा मुक्ति-मुक्तिफल प्रदाः।
तस्मात्सेव्यो गुरूर्नित्यं यथार्थस्तु समाहितैः।।

अर्थात् भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली सारी क्रियाएँ गुरु-कृपा पर निर्भर है। अतः सर्वदा समाहित चित्र से श्री गुरुदेव की सेवा करनी चाहिए।

गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद्गुरुम्।।

अर्थात् गुरु ही विश्व रूप है और वही ब्रह्मा विष्णु और शिव का आत्मा है। गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। अतः सम्यक् प्रकार से गुरु का पूजन करें।

ज्ञान विज्ञान मुक्तिश्च लभ्यते गुरु भक्तितः।
गुरो समंततीनान्यत्साध्योऽसौ गुरुमार्गिणा।।

अर्थात् गुरु की भक्ति से ज्ञान, विज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिए गुरु के समान अन्य कोई नहीं है। गुरु मार्ग के अवलम्बन करने वाले को गुरु ही साध्य है-

यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः।
मनसा वचसा चैव सर्वदाराधयेद् गुरुम्।।

अर्थात् जिससे परे कोई नहीं है, श्रुति जिसे नेति-नेति कह पुकारती है, उस गुरु की अराधना सदा मन और वाणी से करे।

गुरोः कृपा प्रसादेन ब्रह्मा विष्णु महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरु सेवया।।

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरः गुरु की कृपा के प्रसाद से हुये हैं। केवल गुरू की सेवा करने से और गुरु के प्रसाद से उनको सामर्थ्य प्राप्त हुआ है-

न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं स्मरेत।
गुरुज्ञानात्परंतत्वं तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अर्थात् गुरु से अधिक तत्व नहीं है। न गुरु से अधिक तप है गुरु के ज्ञान से परमतत्व का ज्ञान होता है उस गुरु के लिए नमस्कार है।

यावत्कल्पांतको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दोपाद भावयेत्।।

अर्थात् हे देवि। कल्पांत तक जब तक देह है तब तक गुरु का स्मरण करें। यदि मुक्त होने की इच्छा हो तो गुरु का लोप न करें।

***

सद्गुरु के सामने वेद मौन हो गये, शास्त्र दिवाने हो गये और वाक् भी बन्द हो गयी। सद्गुरु की कृपादृष्टि जिस पर पड़ती है, उसकी दृष्टि में सारी सृष्टि ही हरिमय हो जाती है।

हंसयोग की चार अन्तर्भूमिकाएँ

पं० श्री मनोहरलालजी शर्मा

योग शिखोपनिषद् में हंसयोग को महायोग कहा है। मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग तथा राजयोग–ये चारों हंस महायोग की क्रमशः अन्तर्भूमिकाऐं हैं, यानी सीढ़ियाँ हैं। हंस महायोग ही अधिकारी तथा साधनाभेद से चार प्रकार से विभक्त हुआ है।

१–हठयोग

मंत्रो लयो हठो राजयोगो–
उन्तर्भूमिकाः क्रमात्।।१२९।।
एक एव चर्तुधाऽयं
महायोगोऽभिधीयते।
हकारेण वहिर्याति
सकारेण विशेत्पुनः।।१३०।।

एक ही हंसाख्य महायोग चार प्रकार से अर्थात् मंत्र, हठ, लय तथा राजयोग रूप से है। ये चारों हंसयोग को भीतर की भूमिकायें हैं। एक भूमिका की जय होने पर क्रमशः दूसरी की जय होती है।

श्वास हकार की ध्वनि करता हुआ बाहर आता है और सकार की ध्वनि करता हुआ फिर प्रवेश करता है।

हंस हंसेति मंत्रोऽयं
सर्वेर्जीवैश्च जप्यते।
गुरु वाक्यात् सुषुम्नायां
विपरीतो भवेज्जपः।।१३१।।
सोऽहं सोहमिति प्रोक्तो
मंत्रयोगः स उच्यते।

अब हंस महायोग की प्रथम भूमिका मन्त्रयोग बताते हैं। हंसः हंसः यह मन्त्र सभी जीवों से अर्थात् पशु पक्षियों से भी स्वाभाविक जपा जाता है। परन्तु इससे मोक्ष नहीं होता, क्यों ? महेश्वर ने तो कहा है–

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।

आपको इसमें क्या कहना है ? ऊपर के प्रमाण में अजपा गायत्री को योगियों के लिये मोक्षदायिनी कहा है, पशुओं के लिये नहीं। दूसरी यह बात भी कही है कि गुरुवाक्य से यह सिद्ध होती है। वह गुरु-कृपा क्या है ? गुरु के उपदेश से हंस मन्त्र मन सहित सुषुम्ना में प्रवेश करता है, तब इस मंत्र का उलटा जप होता है। किस प्रकार ? **'सोऽहं सोऽहं'** इति इस प्रकार उलटा जप होता है। इसी को मन्त्रयोग कहते हैं। उलटा क्यों होता है ? जैसे उतरते समय ऊपर की सीढ़ी प्रथम नम्बर में गिनी जाती है और चढ़ते समय नीचे की सीढ़ी प्रथम नम्बर में गिनी जाती है और ऊपर वाली सीढ़ी अन्तिम नम्बर में गिनी जाती है, इसी प्रकार अवरोहण क्रम में हंस मन्त्र उलट जाता है। ब्रह्म से अर्थात् ओंकार से क्रमशः प्राण की, हंसः की उत्पत्ति है।

'एतस्माज्जायते प्राणः।' इति कैवल्य श्रुति। परमात्मा से प्राण उत्पन्न होता है। यह अवरोहण नीचे उतरने का क्रम है। अर्थात् ओंकार ही हंस रूप में परिणत हुआ है और आरोहण क्रम में नीचे से ऊपर जाना पड़ता है, यह उलटा क्रम है, इसलिए (अ) हंसः का उलट कर 'सोऽहं' बन जायेगा। इस प्रकार मंत्र का शुद्ध स्वरूप गुरु लोग व्यक्त करते हैं, यही मन्त्रयोग है।

इस विषय पर कुछ और अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है। वह परमेश्वर लीलावश अपनी माया से मोहित हुआ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में क्रमशः विश्व-तैजस-प्राज्ञ नामक जीव का स्वांग करके क्रीड़ा करता है। वह स्वभाव से असंग है। पर वही लीलावश गुरुपदेश से अपने को पहचानता है और आनन्दित हो जाता है। यह विषय कैवल्योपनिषद् में आया है:-

जाग्रतस्वप्नसुषुप्त्यादि
प्रपंचं यत्प्रकाशते।
तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा।
सर्वबन्धैः प्रमुच्यते।।

जो ब्रह्म जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं को प्रकाशित करता है वह ब्रह्म मैं ही हूँ, इस प्रकार जानकर साधक सर्व बन्धों से छूट जाता है। पहले जीव होने का स्वांग करना अवरोहण क्रम है। पुनः जीव स्वांग को त्याग कर अपने परमार्थिक स्वरूप में प्रतिष्ठित होना आरोहण क्रम है। यही सृष्टि और मोक्ष का खेल है। हंसः मन्त्र अवरोहण का फल है परमात्म-स्थिति से उतर कर जीव का स्वांग करना और पुनः स्वरूप स्थान का मन्त्र 'सोऽहम्' है। मोक्ष के लिये हंसः मन्त्र का परिशोधित स्वरूप 'सोऽहम्' है। यही मोक्षदायक है। जीव द्वारा हंसः मन्त्र का नैसर्गिक जप तो स्मृति का मन्त्र है, पश्चाताप का मन्त्र है। 'अरे मैं तो वही परमात्मा था, वही परमात्मा था।' पछताने से कुछ नहीं बनता, क्रिया से मनोरथ सिद्ध होते हैं। 'सोऽहं' हर्ष और आशा का मन्त्र है। 'अहह'! कितने हर्ष की बात है कि मैं वही परमात्मा हूँ, मैं वही परमात्मा हूँ। गुरु द्वारा शोधित मन्त्र की प्राप्ति मन्त्र योग है।

२-हठयोग

हठयोग दूसरी अन्तर्भूमिका है। किस की? हंस महायोग की।

प्रतीतिर्मंत्र योगाच्च
जायते पश्चिमे पथि।।१३२।।
हकारेण तु सूर्यः स्यात्
सकारेणेन्दुरुच्यते।
सूर्याचन्द्रमसौरैक्यं
हठ इत्यभिधीयते।।१३३।।

सुषुम्ना में संचारित मन सहित प्राण 'सोऽहं' का जप करता है। इडा पिंगला का क्या होता है? उस काल में वह क्षीण व्यापार हो जाती है? मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक सुषुम्ना का गमन है। प्राण और मन अभ्यास से आज्ञाचक्र को भेदन करते हुये ब्रह्मरन्ध्र में जाते हैं, सहसा नहीं। सोऽहं मन्त्र के प्रभाव से सुषुम्ना के पश्चिम पथ अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र स्थिति सुख की अनुभूति होती है। गन्तव्य स्थान का पता चल जाता है। सहस्रदल कमल में ही परम शिव का स्थान है। हठयोग इसको क्यों कहते हैं? हंसः मन्त्र का प्रथम अक्षर हकार सूर्य है और दूसरे अक्षर ठकार से चन्द्रमा कहा जाता है। इन दोनों का अर्थात् सूर्य नाड़ी (पिंगला) और चन्द्र नाड़ी (इड़ा) का सुषुम्ना में ऐक्य होता है, श्वास की वक्र गति सरल हो जाती है अतः ह और ठ के मेल से इसे हठयोग कहते हैं। शुद्ध मन्त्र की प्राप्ति मन्त्रयोग और प्राणापान का सुषुम्ना में मिलन हठयोग कहा जाता है। गुरु गोरखनाथ ने भी 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' के प्रथमोपदेश में कहा है-

हृदये प्राणवायु-
स्च्छ्वास-निःश्वास कारो,

हकार सकारात्मकश्चास्यै
चावस्थाभेदे हठयोग इति संज्ञा।
हकार कीर्त्तितः सूर्यष्ठ-
काराश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्
हठयोगो निगद्यते।।९९।।

हृदय में प्राणवायु बाहर निकलते समय हकार ध्वनि करता है, भीतर प्रवेश करते समय सकार ध्वनि करता है। इस प्रकार प्राण की बहिरन्तर अवस्था में अभेद होने पर इसे हठ नाम से कहा जाता है। हकार पद वाच्य सूर्य, उप लक्षण से उसमें अधिष्ठित पिंगला नाड़ी समझना। ठकार वाच्य चन्द्रमा, उप लक्षण से उसमें अधिष्ठित इड़ा नाड़ी ग्रहण करना। इन दोनों के सुषुम्ना में योग से जोड़ देने से अर्थात् इड़ा पिंगला नाड़ियों से प्राण खींच कर सुषुम्ना में निरन्तर संस्थापन होने से हठयोग कहलाता है। प्राणापान का ऐक्य भाव हठ नाम से कहा जाता है। हठयोग का फल बताते हैं-

हठेन ग्रस्यते जाड्यं
सर्व दोष समुद्भवम्।
तदैक्ये साधिते ब्रह्मन्
चित्तं याति विलीनताम्।।१३।।

हठयोग से अर्थात् प्राण का सुषुम्ना में संचार से सब प्रकार के दोषों से अर्थात् वात पित्त, कफ जनित दोषों के कारण शरीर में रोगों की उत्पत्ति से जो जड़ता, अचेष्टा, प्रवृत्ति उदय होती है वह नष्ट हो जाती है, अर्थात् काया नीरोग हो जाती है।

अब दूसरा फल बताते हैं। इड़ा-पिंगला की एकता अर्थात् सुषुम्ना में प्राण संचार सिद्ध होने पर चित्त भी लय को प्राप्त हो जाता है। हठयोग का फिर नामान्तर लययोग हो जाता है। लययोग तीसरी भूमिका है।

३-लययोग

पवनः स्थैर्यमायाति
लययोगोदये सति।
लयात् सम्प्राप्यते सौख्यं
स्वात्मानन्दं परंपदम्।।१३५।।

अब लययोग का फल बताते हैं। लययोग के उदय होने पर कुछ काल के उपरान्त प्राण स्थिर यानी स्पन्दनरहित हो जाता है। लय से सुख, विश्राम मिलता है और अपने आत्मानन्द का परम उत्कृष्ट पद मिलता है। इसी भाव को योग शिखोपनिषद् में भी कहा है:-

सुषुम्नायां यदा हंस-
स्त्वधः ऊर्ध्वं प्रधावति।
सुषुम्नायां यदा प्राणं
भ्रामयेद यो निरन्तरम्।।३५।।
सुषुम्नायां यदा प्राणः
स्थिरो भवति धीमताम्।
सुषुम्नायां प्रवेशेन
चन्द्र सूर्यौ लये गतौ।।३६।।
तदा समरस भावं
यो जानाति सायोगवित्।

सुषुम्ना में प्राण प्रवेश करने पर भी प्राण की ऊर्ध्व अधः गति रहती है। प्राण आज्ञाचक्र तक जाकर भी उसमें प्रवेश नहीं कर पाता, क्यों कि वहाँ बहुत सूक्ष्म छिद्र है। गुरु-कृपा से जब आज्ञा चक्र खुल जाता है तब प्राण मन सहित उसमें प्रवेश करके ब्रह्मरन्ध्र तक जाने का प्रयत्न करता है। आज्ञाचक्र में सुषुम्ना मार्ग से प्राण जाने पर बाह्य चेष्टायें अर्थात् मन की बहिर्मुखता बन्द हो जाती है और लयावस्था उपस्थित हो

जाती है। लय होने पर जप नहीं चल सकता, तो क्या होता है ? आज्ञाचक्र स्थित गुरु स्वयं मार्ग दिखाते हैं, साधक का निजी अहंकार काम नहीं करता। नाद में मन लय हो जाता है और फिर नाद भी स्वयं अन्त को प्राप्त हो जाता है और उन्मनी दशा प्राप्त होती है। जब मन लय हो जाता है तो प्राण भी स्थिर होकर लय को प्राप्त हो जाता है। जब धी मानों का प्राण सुषुम्ना में स्थिर हो जाता है तो सूर्य और चन्द्रमा का लय हो जाता है। तब शिवशक्ति के एक रसता भाव को अर्थात् परमाह्लादता को जो योगी जानता है, वही योग-वेत्ता है।

४-राजयोग

योनिमध्ये महाक्षेत्रे
जवाबन्धूक सान्निभम्।।१३६।।
रजो वसति जन्तूनां
देवी तत्वं समावृतम्।
रजसो रे०लो योगात्
राजयोग इति स्मृतः।।१३७।।

प्राणियों के कपाल कुहर में स्थित सहस्रदल कमल में अकथ योनि (त्रिकोण) के मध्य में जवा बन्धूक पुष्प की भांति रक्त वर्ण देवी तत्व से घिरा हुआ रज अर्थात् 'सः' शक्ति निवास करती है। उस शक्ति (सकार) और रेतस अर्थात् शिव (हकार) के योग से राजयोग कहा जाता है। यहाँ समाधि लग जाती है क्यों कि इसमें रज और रेतस का योग होता है, अतः इसे राजयोग कहते हैं।

अणिमादिपदं प्राप्य
राजते राज योगतः।
प्राणापान समायोगो
ज्ञेयं योग चतुष्टयम्।।१३८।।

हंस योगी अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करके राजयोग से शोभायमान हो जाता है। सार यह है कि ये चारों योग प्राण तथा अपान की साम्यावस्था की प्राप्ति से भिन्न कुछ नहीं है।

प्राप्ति-क्रम

संक्षेपात्कथितं ब्रह्मन्
नान्यथा शिव भाषितम्।
क्रमेण प्राप्यते प्राप्य-
मभ्यासादेव नान्यथा।।१३९।।
एकेनैव शरीरेण
योगाभ्यासाच्छनैः शनैः।
चिरात् संप्राप्यते मुक्ति-
मर्कटक्रम एव सः।।१४०।।

हे ब्रह्माजी! मैंने तुम्हें संक्षेप में हंस महायोग बताया है। जैसा बताया है, वैसा ही है क्योंकि भगवान शिव ने ऐसा कहा है। यह योग अभ्यास से धीरे-धीरे क्रम करके प्राप्त होता है, क्रमरहित नहीं। एक ही जीवन काल में शरीरधारी योगाभ्यास से शनैःशनैः बहुत काल में मुक्ति प्राप्त करता है। योग-सिद्धि की गति वानर-गति जैसी होती है, कभी शनैःशनैः, कभी छलांग मार कर, कभी भाग कर सिद्धि-मार्ग पार होता है। हिरण्यगर्भ और शंकर के इस सम्वाद को हमने विषय की स्पष्टता और दृढ़ता के लिये दिया है।

***

स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

श्री मस्तराम बाबा के प्रवचन से

बड़ी वस्तु का ज्ञान होने से छोटी वस्तु की कामना नहीं होती अथवा विशेष लालसा नहीं होती। आधार की जानकारी होने पर आधेय की आवश्यकता नहीं होती। होती भी है तो गौण रूप से। जैसे भूमि मिल जाय तो अनाज स्वतः उसमें से उत्पन्न कर लिया जायेगा। भूमि के मिल जाने पर अनाज तो उसमें से मिलेगा ही, क्योंकि भूमि में ही एक प्रकार से अनाज का अक्षय भंडार है। भूमि अनाज के आधार है और अनाज आधेय है। जैसे किसी विरक्त महात्मा से पूछा जाय कि आपको एक मन अनाज दें या एक बीघा जमीन दें तो वे कहेंगे कि हमको न तो एक बीघा जमीन चाहिये न एक मन अनाज ही चाहिये। वे बड़ी और छोटी सभी कामनाओं से मुक्त हैं; इसलिये वे कहेंगे कि हमको तो रोटी ही चाहिये। क्योंकि भोजन करना तो स्वाभाविक है; यदि भोजन कोई न करे, ऐसे ही बैठा रहे, तो समाज उसको भोजन करने के लिये बाध्य करेगा। न उसको भूमि की कामना है, न उसको अन्न की कामना है। इसी को कहते हैं– **'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।'** जिनकी बुद्धि न अन्न के लिये, न भूमि के लिये चलायमान होती है, वह स्थितप्रज्ञ है।

इसी बात को दूसरे दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जाता है। एक ओर सौ रुपये रखे जायें और एक ओर एक सेर मिठाई रख दी जाय और दोनों में से एक वस्तु के लेने के लिये कहा जाय तो जो बालक होगा, वह मिठाई ले लेगा और जो बड़ा होगा, वह रुपया ले लेगा। मिठाई रुपये के अधीन है। यह आधार-आधेय सम्बन्ध है। बालक रुपये का महत्व नहीं जानता, इसलिये वह रुपये की ओर से निष्काम है। महात्मा रुपये एवं मिठाई दोनों के विषय में जानते हैं और कामना के स्वरूप को भी जानते हैं; इसलिये वे न रुपया लेंगे न मिठाई ही लेंगे। वे तो जीवननिर्वाह के लिये भिक्षामात्र ही स्वीकार करेंगे अथवा भगवान् का प्रसाद मानकर ही ग्रहण करेंगे। कारण सारा विश्व परमेश्वर के आधार पर आधारित है, इसलिये महात्मा को वह परमात्मा ही प्रिय है। जैसे अन्न भूमि के आधार पर है, मिठाई रुपये के आधार पर है, उसी प्रकार सभी वस्तुएँ परमेश्वर के आधार पर हैं। महात्मा की जानकारी विशेष है, इसलिये वे सब कामनाओं को छोड़कर अपने प्रिय परमात्मा को ही चाहते हैं।

एक महात्मा किसी साधु के आश्रम पर पहुँचे। साधु ने कहा कि 'भोजन की व्यवस्था नहीं है, इसलिये आप यहाँ से पधारिये।' थके होने के कारण वे महात्मा बैठे रहे तो साधु के मन में विचार हुआ और उन्होंने खिचड़ी लाकर महात्मा को दी और कहा–'बनाओ और पा लो।' महात्मा ने उसमें से आधी मुट्ठी ले ली और कच्ची खाने लगे तो साधु ने सोचा कि ये तो कच्ची ही खा रहे हैं, तब उसने रोटी बनाकर दी। इस कथा को कहने का अभिप्राय यह है कि ऐसे निष्काम पुरुष को जितनी आवश्यकता होती है, उतना ही वे लेते हैं, परन्तु त्याग जिस भाव से किया जाता है, उसी प्रकार का कहा जाता है–सात्विकी, राजसी अथवा तामसी। यदि कोई आत्मा में ही संतुष्टि के कारण ग्रहण नहीं करता, तब तो वह स्थितप्रज्ञ है, नहीं तो किसी दूसरी अपेक्षाकृत बड़ी सांसारिक कामना से ग्रहण नहीं

करता, अर्थात् अधिक की इच्छा से थोड़ा नहीं चाहता, तो संसारी है। सारा विश्व परमेश्वर का ही है। इसलिये थोड़ा एवं बहुत सब परमेश्वर के ही समर्पण कर देना चाहिये। जो कुछ भी हमें अपना प्रतीत होता है अथवा हमको उपलब्ध हुआ है, उसे वर्ण और आश्रम के अनुसार, देश के अनुसार, धर्मपूर्वक जीवन-निर्वाह मात्र के लिये ग्रहण करें, तब तो वे विषय प्रसाद रूप हो जाते हैं। इसके विपरीत भगवान् को भी जो प्रसाद लगाया गया है, उसको रागद्वेषपूर्वक ग्रहण करें, तो वह भी विषयरूप ही है। जो हमारे वर्णाश्रम के अनुसार हमारे पास है, वह प्रसाद ही है, चाहे उसमें सुख प्रतीत हो चाहे दुःख। **'स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।'** इसके अतिरिक्त **'विहाय कामान् यः सर्वान्......'** इस श्लोक में भी जो संसारी कामनाएँ हैं, उनको छोड़ने की बात कही गयी है। महात्माओं को सत्वगुणप्रधान फल मिले अथवा अन्य जो कुछ भी मिल जाय, कामना न होने से वे उसी को भगवत्प्रसाद के भाव से ग्रहण कर लेते हैं। आग्रह की भावना न हो- चाहे जो चीज मिले, चाहे जितनी मिले, उसको पवित्र भावना से प्रसन्न हेकर सेवन करना ही प्रसाद ग्रहण करना कहलाता है। जो कामना से कर्म करते हैं, वे तो कुली की तरह कर्म का बोझा ही ढोते हैं। उनको ज्ञान से भी अहंकार ही उत्पन्न होता है, इससे उनमें ज्ञान की गरमी होती है; इस प्रकार वे कर्म के बोझ और ज्ञान की गरमी से संतप्त रहते हैं। उनके कर्म काम, क्रोध, लोभादि से युक्त होने से वे वैसे ही डूब जाते हैं, जैसे बोझे वाला मनुष्य डूब जाता है। और अहंकार भी एक भारीपना ही है, इसलिये ज्ञान की गरमी और शास्त्रज्ञान से युक्त कामना वाले साधक भी कैसे पार हो सकते हैं ? कामना यदि पूरी हो जाय तो लोभ उत्पन्न हो जाता है। कामना से ही क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि उत्पन्न होते हैं। कामना के रहने से ही विषयों का ध्यान होता है और क्रमशः अन्त में विनाश हो जाता है; अतएव जो वस्तु मिले, जितनी मिले, उसको पवित्र भावना से प्रसन्न होकर सेवन करना ही प्रसाद है। यह जीवन भी प्रसाद ही है। किसी को उच्च जाति मिली है, किसी को नीची जाति मिली है, किसी को ऊँची पदवी मिली है, किसी को नीचा पद मिला है; पर भगवद् भाव से प्रेम से उस को स्वीकार करते हुए जीवन-निर्वाह करना चाहिये। ऊँची पदवी या जाति के अनुसार रहें भले ही, पर उसमें अहंकार नहीं करना चाहिये। ऐसे ही नीची पदवी या जाति में हीनता नहीं माननी चाहिये; क्योंकि वह प्रसाद है। जाति अथवा कर्म से राग-द्वेष न करे तो उसे ग्रहण करना प्रसाद की तरह ही है। **'इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।'** इन्द्रियों के विषयों में स्वाभाविक ही राग-द्वेष होता है। अतएव राग-द्वेष के वश में न हो; क्योंकि जो इन्द्रियों के अनुकूल विषय हैं, उनसे द्वेष होता है। जैसे नाक के लिये सुगन्ध राग का विषय है तथा दुर्गन्ध द्वेष का विषय है। इसी प्रकार कान के लिये मधुर और कठोर शब्द और त्वचा के लिये कोमल तथा कठोर स्पर्श क्रमशः राग और द्वेष के विषय होते हैं। जब राग और द्वेष हैं और ये ही प्रबल शत्रु हैं, तब फिर कैसे छुटकारा होगा ? इसके लिये भगवान् कहते हैं- **'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः....,** अपना धर्म यदि कठोर, दुर्गन्धमय कर्मयुक्त, नीचा तथा अपमानयुक्त हो, तो भी उसको धर्म समझकर स्वीकार करे; परधर्म चाहे सुगन्धयुक्त हो,

सम्मानयुक्त हो, चाहे लोकदृष्टि में बड़ा हो, तो भी उसको परधर्म समझकर ग्रहण नहीं करना चाहिये। कटुता का सेवन करना धर्म हो तो उसका ही सेवन करना चाहिये। इस प्रकार सब धर्मानुकूल कामना की व्यवस्था होती है; नहीं तो फिर, कामना तो कामना ही ठहरी। उसका अन्त कहाँ हो सकता है ?

भूलोक, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक-सभी के लालच को जिसने त्याग दिया है, वही बुद्धिमान् तथा निष्कामी है। परन्तु साधक को भूलोक के विषयों से ही त्याग प्रारम्भ करना चाहिये; क्योंकि वह तो भूलोक के विषयों से ही बंधा हुआ है। स्वर्ग से तो तब बँधेगा, जब स्वर्ग उसको उपलब्ध होगा। स्वर्ग की कामना तो बाद में है, पहले तो विषयों की ही कामना मारे ले रही है; विषयों की कामना छोड़ने वाले को ही स्वर्गलोक या ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। विषयों की ही कामना जिसको हो, उसे स्वर्ग और ब्रह्मलोक की प्राप्ति सम्भव नहीं है। जैसे कोई भूलोक की ही कुरूप स्त्री से बंधा हो तो स्वर्ग की अप्सरा उसको कैसे उपलब्ध होगी ? जो मोटरों में बैठकर आनन्द या गौरव का अनुभव करता है, वह स्वर्ग की कामना नहीं करेगा-ऐसा सोचना कैसे सम्भव है? इसलिये भूलोक की कामनाओं की व्यवस्था सब कामनाओं की व्यवस्था है। राग-द्वेष से रहित होकर जो भगवान् का कर्म करता है, वह व्यवस्थित है। जो कर्म और कर्म के फल का परित्याग कर देता है अर्थात् जो लौकिक आधार और आधेय को छोड़ देता है, वही व्यवस्थित है। कर्म को छोड़ने का अभिप्राय कर्म में जो राग-द्वेष है, उसको छोड़ने से है। जैसे गुरुजन जो संसार से उपराम हैं, जो राग-द्वेष से रहित हैं, जिनका जीवन शास्त्रीय पद्धति के अनुसार है, वे आज्ञा करें तो उस आज्ञा का भलीभाँति पालन करना साधकों का स्वधर्म है और मनमानी विधि से कर्म करना कर्म है, उसमें राग-द्वेष सहज होंगे ही। कोई कहे कि परमेश्वर के लिये तो कामना होनी ही चाहिये, तो उसका उत्तर है कि आत्मा तो हम हैं ही और परमेश्वर के अंश भी हैं ही, तो हम कैसे उनसे भिन्न हो सकते हैं और अभिन्न होने पर फिर कामना हो ही कैसे सकती है ?

कामनाओं के तीन विभाग हैं-**लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा।** आत्मा से भिन्न इन कामनाओं का ही त्याग करना चाहिये। यही है **'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्.......!'** सर्वधर्म अथवा कामनाओं को छोड़ने का अभिप्राय सांसारिक कर्म अथवा धर्मों से है; क्योंकि संसार में ही अनेक धर्म तथा अनेक कर्म हैं। आत्मा तथा परमेश्वर तो एक ही हैं। उनमें बहुत्व की कल्पना ही नहीं है। जो अपने में ही महान् है, वह महान् है। जो अच्छा भोजन करने से प्रसन्न हुआ, वह क्या प्रसन्न हुआ; जो अच्छा वस्त्र पहनकर प्रसन्न हुआ; वह क्या प्रसन्न हुआ, जो बहुत द्रव्य प्राप्तकर प्रसन्न हुआ, वह क्या प्रसन्न हुआ; जो राज्य प्राप्त करके प्रसन्न हुआ, वह क्या प्रसन्न हुआ। जो इन बाह्य विषयों के बिना भी सदा प्रसन्न है, जो अपने में ही प्रसन्न है, वही स्थितप्रज्ञ है। कोई वस्तु बन्धन का हेतु नहीं है। अपनी कामना (या ममता) ही बाँधती है। जैसे कोई कहता है कि अमुक ने मुझे बलात् अमुक वस्तु या रुपया दे दिया, हमारी कुटिया में फेंक गये, मेरी पुस्तक में रख गये या

मेरे कपड़े में बाँध गये-ऐसा कहना ठीक हो सकता है। परन्तु भीतर तो तुमने अपने से ही बाँधा है। जब तक कोई मन से स्वीकार नहीं करेगा, तब तक बाहर ही बंधा रह जायेगा; कपड़े में बँधा रह जायेगा। इस प्रकार धन किसी को बाँधता नहीं है, हमारी कामना (तथा ममता) ही धन से हमको बाँधती है। पर वस्त्र छोड़ने का इतना महत्व नहीं है, यदि कोई कहे कि हम अपने मन के अनुसार बरतेंगे, तो मन ही तो कामना का आधार है; वही तो बाँधेगा। इसलिये मन के अनुसार नहीं, बुद्धि के अनुसार बरतना चाहिये।

जनक राजा का दृष्टान्त तो ठीक है; पर वे तो संयमी थे एवं मर्यादा के अनुसार बरतते थे। गृहस्थ होने के नाते वे गृहस्थों के ही आदर्श थे, न कि गृहत्यागी महात्माओं के। इसलिये महात्माओं को जनक आदि को आदर्श न मानकर शुकदेव आदि को ही आदर्श मानना चाहिये। और गृहस्थ लोगों को भी अपनी निरंकुशता के लिये जनक आदि का उदाहरण देना ठीक नहीं; क्योंकि जनकजी जब रामजी से भेंट करने वन में गये थे, उस समय उन्होंने भोजन के अवसर पर सबको सावधान करते हुए कहा था-'**इहाँ उचित नहिं असन अनाजू**.........., तो यह उनके संयम एवं आदर्श का प्रमाण है। तपोवन में भोगों को भोगना किसी प्रकार भी उचित नहीं, यह उनकी निवृत्तिप्रियता का प्रमाण है। निवृत्तिप्रिय हुए बिना कोई गृहस्थ जनक के समान नहीं हो सकता। प्रवृत्ति की प्रधानता बाहर से भले ही हो, पर भीतर से तो निवृत्ति की ही प्रधानता होनी चाहिये। जिसका अन्तःकरण निवृत्ति-प्रधान है, वह निवृत्त पुरुष तपोवन में प्रवृत्ति नहीं फैलायेगा, वहाँ वह भोगों को भोगने के लिये किसी को प्रेरित नहीं करेगा, न स्वयं भोगेगा। राजा होकर यदि राजसी वस्त्रों का दान कर दें, तब भी श्रद्धालु लोग उनको राजसी वस्त्र ही पहनायेंगे और शास्त्रीय नियम उनको राजसी वस्त्र पहनने के लिये बाध्य करेंगे। उसके मन में स्पृहा नहीं है यह उसके भावों के द्वारा, क्रिया के द्वार, कर्म के द्वारा वैसे ही प्रस्फुटित होता रहेगा, जैसे पका हुआ आम थोड़ा-सा धक्का लगने से रस टपकाने लगता है। उदाहरण के लिये सम्राट् हर्षवर्धन कुम्भ के मेले में अपना सारा धन दान कर देते थे। उनकी बहिन उनको फटा वस्त्र पहना देती थी और वह वस्त्र भी उनके अधीन राजालोग लेकर उनको राजसी वस्त्र पहना देते थे और उन वस्त्रों को ले लेते थे। संसारी लोगों का एवं निष्कामी लोगों का कर्म तो एक ही प्रकार का होता है, उनमें भेद केवल यही है कि निष्कामी स्थान-स्थान पर त्याग की सुगन्ध बिखेरता है एवं सकामी ग्रहण या लोभ की दुर्गन्ध फैला देता है। भिक्षा तो संन्यासी भी करते हैं और भिखारी भी करते हैं; लेकिन उनमें एक अन्तर है कि भिखारी में भिक्षा के लिये दीनता रहती है, न मिलने पर चिन्ता होती है और संन्यासी की भिक्षा चिन्ता एवं दीनता से शून्य होती है। गीताजी में पहले आत्मज्ञान की चर्चा हुई है, फिर स्वधर्म की चर्चा हुई है। और उसको प्रयोग में किस प्रकार लायें, इसके लिये कर्मयोग का वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् यह कहा गया है कि कर्मयोग के विषय में जानने मात्र से कोई कर्मयोगी नहीं हो सकता अथवा शास्त्रों की बात जानने मात्र से कोई ज्ञानी नहीं हो सकता; अपितु प्रयोग से ही जब तक वह ज्ञान अच्छी तरह पच न जाय, स्वाभाविकता

को प्राप्त न हो जाय, तब तक ज्ञान ज्ञान नहीं है, शक्ति देने वाला नहीं है। शास्त्रों के बहुत ज्ञान से भी शान्ति नहीं होती।

ये कामनाएँ तो मक्खियों से भी ज्यादा काटती हैं–यह बात महात्मा लोगों को ज्ञात है। किसी का शरीर गंदा हो, उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही हों, तो वे उतना कष्ट नहीं देतीं, जितना कि कामनाएँ कष्ट देती हैं। मक्खियाँ तो रात में सो जाती हैं, पर कामनाएँ रात में भी जागती रहती हैं। कामनावाला मन अपना जितना शत्रु है, उतना दूसरा कोई नहीं। कामनावाला मन दुर्दान्त होकर जितना दुःख देता है, उतना दुःख कोई शत्रु नहीं दे सकता। कामनाएँ मनुष्य को बहुत दुःख देती हैं। यह बात बिल्कुल सत्य है कि कामनाएँ प्रज्वलित अग्नि हैं; इसमें जो पड़ता है, वही भस्म हो जाता है।

जितने सुख हैं, वे मनुष्य को उतनी शक्ति नहीं दे सकते, जितना शान्त मन सुख दे सकता है। किसी को कितनी ही सुखसुविधा हो, पर असली शान्ति नहीं मिलती, कारण कि ये सुख बाहर के हैं। जो हरे-भरे वृक्ष को ही देखता रहता है, भीतर की आग को नहीं देखता, वह समझदार नहीं है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती। यही भगवान् कहते हैं– **'प्रजहाति यदा कामान्..............,** कामना के अभिमुख जिसका मन है, वह मनमुख कहलाता है। जिस-किसी का मन कामना की ओर नहीं है, वही गुरुमुख कहा जाता है। किसी-किसी को अपने में कामना नहीं दीखती तो वह अपने को निष्काम समझने लगता है। जिनको कामना नहीं दीखती, राग-द्वेषादि भाव और सुख-दुःख रूप फल ही दीखते हैं, वे नादान साधक हैं; उनको भजन का फल नहीं दीखता, भजन का कष्ट ही दीखता है। भजन ही शीतल जल है; इसके बिना संसार के तापों से शान्ति नहीं हो सकती। भजन के बिना शान्ति चाहना वैसा ही है जैसे कोई मरुस्थलीकी ओर जा रहा हो और गंगाजल प्राप्त करने की इच्छा रखे। जिसको संसार में संताप ही नहीं सूझता, वह तो सांसारिक साधक है। जो कोई ऐसा समझता है कि हम तो त्यागवृत्ति से रहते हैं, हम तो थोड़े में संतुष्ट रहते हैं, हमको क्या है ? यह शरीरगत अभिमान है, उसको अन्तःकरण की कामनाओं का दमन करना चाहिये। कोई विद्वान् पुरुष कहे कि पढ़ने-लिखने से क्या होता है ? उसका अभिप्राय पढ़ने में जो अहंकार है, उस दूषण को प्रदर्शित करने में है; क्योंकि वह भी विद्वान् है। वैसे ही वैरागी भी साधकों को सावधान करने के लिये स्थूल त्याग की आलोचना कर देता है। कर्म के लिये विधि होती है, त्याग के लिये कोई विधि नहीं होती।

भगवान् कहते हैं कि सब कामनाओं को जो पुरुष जब छोड़ देता है, तब वह 'स्थितप्रज्ञ' हो जाता है। कामनाओं को छोड़ दो, ऐसी बात उन्होंने नहीं कही। यह कहना वैसा ही है जैसे कोई किसी बालक को कहे कि इस पहलवान को पछाड़ दो; क्योंकि बालक यदि खूब माल खा-पीकर पहलवान बने, तभी वह पहलवान को पटक सकता है। यह कथन निष्प्रयोजन नहीं है। वैसे ही किसी के कामनाओं को छोड़ने की बात नहीं कही जाती। कोई धोती-कमीज-गहना आदि उतारकर फेंक सकता है, पर उसी प्रकार कामनाओं को नहीं छोड़ सकता। कामनाओं का त्याग तो कर्मयोग करते-करते धीरे-धीरे होता है। कामनाएँ छूट जाती हैं, तभी वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जब

कामनाओं को छोड़ देता है; तब आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है। वह सब अपने में ही देखता है, और सब कामनाएँ उस आत्मा में आकर समाहित होती रहती हैं। आत्मा आधार है, कामनाएँ आधेय हैं। छोटे-छोटे झरने गंगाजी में आकर मिलते हैं। जो व्यक्ति कामनाओं में फँसा हुआ है और अपने स्वरूप को भूल रहा है, वह सुखी कैसे रह सकता है। जैसे अपने महल में सिपाहियों के संरक्षण में सोया हुआ राजा भी स्वप्न में जंगल के जानवरों के बीच भ्रमण करते हुए कष्ट पाता है; क्योंकि वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल रहा है; वैसे ही जो अपने को भूलकर संसार में भटक रहा है, वह कष्ट पाता है। स्त्रियाँ भ्रम से अपने सुख के लिये पति-पुत्र चाहती हैं; तब सोचो कि अपने आत्मा में ही परमेश्वर है, वह पति, पुत्र सब कुछ है। कोई कितना ही नजदीक बैठे तो भी कुछ दूर ही रहेगा; परन्तु परमेश्वर कभी दूर हो ही नहीं सकता। जो भाग्यवान् पुरुष परमात्मा में स्थित रहता है, वही वास्तव में सुखी है। हमारे वस्त्रों से भी परमेश्वर अधिक समीप है। हमारी भूल है कि हम अपने शरीर को ही देखते हैं। सब जीव परमात्मा के अंश हैं। हम में और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। जैसे अग्नि में और उष्णता में कोई भेद नहीं है। आत्मा तो कभी नष्ट नहीं होता, उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। शरीर तो अवश्य नष्ट होगा, इसके लिये क्या चिन्ता करनी है ? अगर चिन्तन करना है तो धर्म का चिन्तन करें। कर्मयोग के द्वारा स्थितप्रज्ञ प्राप्त होती है। और आत्मा के ज्ञान से ज्ञानयोग की प्राप्ति होती है। धर्म के लिये क्षत्राणी अपने परम प्रिय पति व पुत्र को युद्ध में भेजती है। पंजाब में हकीकतराय हुए, जिन्होंने धर्म के लिये हँसते-हँसते अपना शरीर छोड़ दिया। वह रोती हुई शोकातुर माता की ओर नहीं देख रहा था, माता के दूध की ओर ही देख रहा था। जिसको जो सुहाता है, वही अच्छा लगता है। विषयी पुरुष को विषय ही प्रिय लगते हैं, पर धर्मात्मा मनुष्यों को धर्म ही अच्छा लगता है। इसलिये धर्म के लिये ही जीना उचित है और धर्म के लिये मरना विहित है। पर अपने सुख के लिये रोना और हँसना ठीक नहीं। पिता-पुत्र आदि के दुःख को देखकर दुखी होना धर्म है, पर आत्म स्वरूप को देखने पर अपने सुख-दुःख के लिये रोना-हँसना ठीक नहीं होता। अपने में जो संतुष्ट हो जाता है, वह 'स्थितप्रज्ञ' है। कामनाओं के छूट जाने पर ही यह सम्भव है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' से जो कहा गया है, उसके अनुसार कर्म करने पर क्रमशः कामनाएँ छूट जाती हैं। जिसका मन अपने-आप में ही संतुष्ट रहे और दूसरा कुछ नहीं दीखे, तो आत्मा ही दीखता है। आत्मानन्द लौकिक हर्ष-जैसा नहीं है। आत्मा में ही बिना वस्तु के, बिना कामना के भी प्रचुर आनन्द है। जहाँ विषयानन्द होता है, वह झूठा होता है और शोक में परिणित हो जाता है। धन मिलने पर हर्ष और धन चले जाने पर शोक होता है। पृथ्वी को धन आने से हर्ष नहीं, धन चले जाने से शोक नहीं। चाहे भूगर्भ में है या राजा के खजाने में, रहा तो पृथ्वी पर ही।

जो फल को छोड़ने में समर्थ होता है, वही कामना को छोड़ पाता है। कामना छोड़ने वाला ही सुकृत-दुष्कृत को छोड़ सकता है। सुकृत-दुष्कृत को छोड़ने वाला ही सुख-दुःख सहन करने में समर्थ हो सकता है और वही आनन्द पा सकता है। जो बिना विषयों के ही भीतर आनन्द पाता है, वही

स्थितप्रज्ञ है। जो आत्मा में ही संतुष्ट है, मौज में ही जो मौज देखता है, वही स्थितप्रज्ञ है। इस प्रकार जो सुख-दुःख में साम्य प्रतिष्ठित करके दोषों को जला देता है, वह 'स्थितप्रज्ञ' हो जाता है।

'यदा ते मोहकलिलम्'। यह शरीर मोह कलिल है– हड्डी, माँस, मज्जा, रक्त। ऐसा ही होता है कलिल–कीचड़। मोहकलिल में भी लोग सौन्दर्य देखते हैं, लहू का कीचड़ है यह शरीर। इसमें ही रमणीय भाव रखते हैं और खूब सजाते हैं, इसलिये कि बुद्धि मोह–कलिल में फँसी हुई है। इसी के लिए पाप कर्म करते हैं और इसमें ही सुख देखते हैं; पर यह दुखी है, इसलिये दुखी होते हैं। एक बार गोपीचन्द को बहुत–सी स्त्रियाँ स्नान करा रही थीं और भाँति–भाँति के सुगन्धित द्रव्य लगा रही थीं, पर उनकी माँ यानी बुद्धि जो ऊपर थी, वह देख रही थी कि इस शरीर को इत्र लगा रहे हैं, ये मोह-कलिल में फँसे हैं। उसकी आँखों से आँसू आ गये कि आज तो स्नान करा रहे हैं, पर एक दिन इसे फूँक दिया जायेगा या गीध खा जायेंगे शरीर में इत्र नहीं है, इसलिये लगा रहे हैं–उसमें सफाई नहीं है तो सफाई कर रहे हैं, यानी दुर्गन्ध को ढाँपने के लिये ऐसा करते हैं; क्योंकि ऐसा न करें तो दुर्गन्ध तो उसका स्वरूप ही है। पीतल को मलते हैं, नहीं तो काला पड़ जाता है; सोना को साफ करने की जरूरत नहीं। गोपीचन्द की माँ की आँखों से गरम आँसू निकल गये। तप्त पुरुष की आँखों मे हृदय के ताप से आँसू गरम हो जाते हैं। गोपीचन्द ने अपनी माँ की ओर देखा तो माँ–बुद्धि रो रही थी। गोपीचन्द को इन्द्रिय विजयी कह सकते हैं। यह इतिहास भी है, दृष्टान्त भी है।

***

प्रभु की वस्तु से प्रभु की पूजा करते रहो

करते रहो निरन्तर प्रतिदिन प्रतिपल मन-मति का उत्कर्ष।
शुद्ध भाव, शुचितम विचार को सदा बढ़ाते रहो सहर्ष।।
सदा दूसरों के सुख–हित का पावन मंगलमय कुछ काम।
तन-मन-वाणी से शुचि प्रभु की सेवा समझ करे निष्काम।।
पर न करो कर्तव्य आदि का मन में किंचित् भी अभिमान।
प्रतिफल पुरस्कार मत चाहो; पूजो समुद सहज भगवान।।
प्रभु की वस्तु, प्रेरणा प्रभु की, लेने वाले भी प्रभु आप।
अर्पण करते रहो सर्वदा मिटा असत् ममता की छाप।।

प्रस्तोता–अशोक दिग्विजय

अद्भुत कृपायें

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

सहारनपुर में स्थापित श्री चन्द्रमोहन प्रभु योग प्रचार आश्रम में जब (सन् १९९२) श्री प्रभु दरबार के लिये सिंहासन बनाया जाना था तो मिस्त्री ने हमसे पूछा दरबार कहाँ बनाना है और कैसा बनाना है। उसका नक्शा दिखाइये। मैंने कहा भाई नक्शा वक्शा तो नहीं बनाया है हम तो सब कार्य अपने श्री सद्गुरुदेव जी से पूछ कर ही करते थे, तो मिस्त्री बोला उनसे जल्दी पूछकर बताइये। मैंने मिस्त्री से कहा भाई अब उन तक पहुँचना इतना आसान नहीं है वो ही कुछ कृपा करें तो करें। इतनी बात के बाद मैंने मन ही मन श्री गुरुदेव जी का ध्यान करते हुये एक नक्शा बनाकर मिस्त्री को बता दिया उसी के अनुसार प्रभु दरबार की नींव रख दी गई। प्रभु दरबार की वेदिका बनकर तैयार हुई तो मन में यही आया कि पता नहीं श्री श्री महाराज जी कैसा दरबार बनवाते, अब मैं कैसे पता करूँ कि यह सब ठीक है कि नहीं यह सोचकर श्री श्री महाराजजी की स्थूलाकृति के वियोग की पुनरावृत्ति हुई और आँखों में आँसू भर आये और मन में यही आया कि हे सामर्थ्यशाली सद्गुरुदेव आप कहाँ नहीं हैं आपकी दयामयी दृष्टि से कुछ नहीं छिपा है। इतने में जो कुछ हुआ उसे देखकर सबके ह्रदय कांप गये उपस्थित सभी लोगों के देखने में आया कि लगभग दो मीटर लम्बा एक भयंकर काला नाग दरवाजे से अन्दर आ रहा था वह सीधा उस स्थान की ओर लपका जहाँ श्री प्रभु दरबार के निर्माण का कार्य चल रहा था और जिसके बारे में मैं मन में उपरोक्त बातें सोच रहा था। वह भयंकर नाग सीधा सतसंग हाल में अपनी वक्र गति से चलता हुआ अर्धनिर्मित सिंहासन के ऊपर फन निकाल कर बैठ गया जहाँ पर श्री प्रभु जी एवं श्री श्री महाराज जी के स्वरूप स्थापित होने थे। कुछ क्षण वह उसी अवस्था में बैठा रहा। मिस्त्रियों में कुछ लोग मुसलमान थे उन्होंने कहा इसे मार दें। मैंने मना कर दिया तो वह लोग बोले नहीं तो यह हमें काट लेगा कोई नहीं बचेगा। पर तुरन्त ही वह नाग सिंहासन से उतरा और सबके देखते-देखते सतसंग हाल से निकलता हुआ निर्माणाधीन शिव मन्दिर में आया वहाँ एक मिनट रहा और फिर आश्रम से बाहर निकलकर अदृश्य हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे श्री सद्गुरुदेव जी ने मन की पुकार सुनकर यह प्रमाणित किया कि जो हो रहा है वह मेरी ही मर्जी से हो रहा है। वास्तव में उनकी मर्जी के बिना कभी कुछ हो ही नहीं सकता। अब श्री चन्द्र मोहन प्रभु योग प्रचार आश्रम पर घटी एक विलक्षण घटना (घटनायें तो अनेक हैं) लिख रहा हूँ, आशा है यह घटना श्री श्री महाराज जी की कृपामयी दृष्टि की परिचायक सिद्ध होगी।

आदरणीय ब्र० श्री राजनरेश शुक्लाजी (जो श्री श्री सद्गुरुदेव जी को जल सेवन कराते थे) का भतीजा चि० कमल भाई श्री शुक्ला जी से मिलने सहारनपुर योग आश्रम आया हुआ था। भाई श्री शुक्लाजी बद्रीनाथ धाम में कुछ वर्ष रहे पर गत कई वर्षों से सहारनपुर आश्रम में अपने श्री गुरुदेव जी की सेवा में लगे हैं। उस दिन चि० कमल आश्रम की छत पर रेलिंग के सहारे दोनों हाथ रेलिंग पर रखे खड़ा हुआ था इतने में उसे अपने हाथ में कुछ चुभता हुआ सा प्रतीत हुआ उसने झटके से हाथ हटाया तो देखा एक साँप है जो अन्दर से रेलिंग में चिपका हुआ है उसने हाथ में काट लिया है।

चि० कमल तुरन्त नीचे आया उसे कुछ नहीं सूझा बस प्रभु दरबार में जाकर श्री प्रभुजी एवं श्री श्री महाराजजी के अभय श्री चरणों में जाकर निवेदन कर दिया कि गुरुजी मुझे साँप ने काट लिया है। मैं तो कुछ जानता नहीं। आपकी जैसी इच्छा। उसको तेज नींद आने लगी और वह सो गया। दो तीन घण्टे तक सोता रहा। भाई श्री शुक्लाजी भी उस समय आश्रम में नहीं थे श्री गुरुपूर्णिमा उत्सव की तैयारी में लगे थे इसलिये कहीं गये हुये थे। चि० कमल दो तीन घण्टे बाद जब सोकर उठा तो ऐसा लगा मानो कुछ हुआ ही नहीं। नहीं तो यह कहा जाता है साँप के काटे के बारे में कि साँप का काटा यदि सो गया तो फिर नहीं उठता है पर परम करुणामय श्री श्री सद्गुरुदेवजी ने उसका क्षणिक भुगतान कराकर सुलाकर भी उठा दिया और सांप के काटे का कुछ भी असर नहीं होने दिया। गत गुरुपूर्णिमा पर चि० कमल ने अपने मुँह से यह घटना मुझे सुनाई थी।

मुझे कुछ और बातें स्मरण हो रही हैं। वर्णन कर देता हूँ। जब श्री चन्द्रमोहन प्रभु योग प्रचार आश्रम की नींव योगिपुरुष आचार्य श्री चन्द्रहास जी द्वारा रखवाई थी उसके बाद जैसे-जैसे कार्य आगे बढ़ने लगा तो विलक्षण घटनायें भी सामने आने लगी। एक दिन स्वप्न में मुझे कुष्ठ रोग से ग्रस्त दम्पत्ति दिखाई दिये वह खुशी से नाच रहे थे। मैंने उनसे पूछा कि आप लोग नाच क्यों रहे हैं तो वह बोले कि हम तो बहुत-बहुत वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब वह दयामय करुणा निधान यहाँ विराजमान होंगे। अब सौभाग्य से इतने वर्षों बाद ऐसा अवसर आया है। एक दिन कहीं से कोई अघोरी वहाँ आ गया उसने आश्रम के गेट के बाहर अपना डेरा डाल दिया। गन्दे कपड़े, रोटी के टुकड़े गन्दा पानी आदि बिखरा दिया। वह बीच-बीच में दुर्गासप्तशती के संस्कृत में मन्त्र भी बोलता था। हम लोगों को आते जाते आशीर्वाद भी देता था। कुछ दिन वहाँ पड़ा रहा फिर पता नहीं चला गया। एक दिन चार महात्मा आये और आश्रम में जो चौकीदार रहता था उसको बुलाकर श्री गुरुदेवजी के बारे में कुछ बातें समझाई और बिना कुछ लिये ही चले गये। आश्रम निर्माण के समय एक समय ऐसा भी आया कि कुछ भाइयों के विक्षेप के कारण कुछ परिस्थिती ऐसी बनी कि निर्माण कार्य रुक गया। मन बहुत दुःखी हुआ और आँखों से अश्रु गिरने लगे और आँसुओं की मालायें श्री गुरु चरणों में समर्पित होने लगी। मन ने मूक निवेदन किया कि हे महाराजजी आपने पूर्व में अपने श्री मुख से वरिष्ठ गुरुभाई श्री जुगमन्दरदास जी से मुझ अधम दास के लिये श्री मुख से यह कहा था कि "आश्रम का काम यह करा लेगा, यह करा लेगा" और फिर शरीर त्यागने से पूर्व भी पत्र द्वारा सूचित करके यह आदेश दिया था कि "लल्ला चाहते तो हम भी हैं कि सहारनपुर में एक आश्रम हो जिससे प्रचार अच्छा होगा" (वह पत्र मेरे पास सुरक्षित है) तो फिर यह व्यवधान क्यों आया। अब सब लोग हँसेंगे और आपके संकल्प का क्या होगा। खैर इतना निवेदन करके मैं तो घर आ गया और रात में ही घट-घट के जाननहार श्री श्री महाराजजी के दर्शन निर्माणाधीन दरबार के आगे तख्त पर बैठे हुये उन्होंने संकेत से अपने पास मुझे बुलाया और पता नहीं उनके करकमलों में कहाँ से गुलाब की पंखुड़ियाँ आ गई और उन्होंने तीव्र संकल्प करके मुझे पुष्प प्रसाद दिया। इस दिव्य कृपा की करामात अगले दिन ही सामने आ गई जो मिस्त्री काम पर लगे थे वह घर आकर कहने लगे कि

जब आपके पास हो तब हमारी मजदूरी दे देना काम मत रोकिये। कार्य फिर शुरू हो गया क्योंकि मैटिरियल तो वहाँ था ही जिस समय निर्माण कार्य चल रहा था तो शुरू में ही मिस्त्री को मैंने बता दिया था कि भाई जिनका यह स्थान बन रहा है उनका सर्पों से निकट का रिश्ता है यदि कोई सर्प यहाँ दिखाई दे जाये तो उसे कभी मारना नहीं चाहे हम यहाँ हों या नहीं। इसके बाद अनेक बार बड़े-बड़े सर्पों के दर्शन हुये केंचुली भी मिली। जब ज्यादा सर्प निकलने लगे तो कुछ भाइयों ने हमसे कहा भाई हम सत्संग में कैसे आये हमें कोई साँपों से थोड़ी कटवाना है। मुझे यह बात लग गई मैंने उसी समय आश्रम पहुँचकर ताला खोलकर दरबार में प्रार्थना की कि हे कृपामय यदि यहाँ इसी प्रकार सर्पों का ताण्डव चलता रहा तो सत्संग में कौन आयेगा। कृपा करके अपने गणों को आदेश दीजिये कि भक्तों के सामने अपने दर्शन न दें। चाहे एकांत में आश्रम में कहीं भी घूमते रहें। इसके बाद सर्प यदा कदा ही दिखाई दिये अन्यथा नहीं।

यह एक विचारणीय विषय है जरा विचार करके देखिये, जो वस्तुयें श्री गुरुजी के शक्ति सम्पन्न अमोघ संकल्प से अस्तित्व में आई हों और जिनकी सुरक्षा की चिन्ता श्री गुरुदेव जी के मन में होती है उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है। ऐसा सोचना भी भ्रमित बुद्धि का परिचायक है। उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

***

खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मल हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह मांस हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है, वह मन हो जाता है। पिया हुआ जल तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो स्थूलतम भाग होता है, वह मूत्र हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह रक्त हो जाता है और जो सूक्ष्मतम भाग है वह प्राण हो जाता है। खाया हुआ घृतादि तेज तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो स्थूलतम भाग है वह हड्डी हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह मज्जा हो जाता है और जो सूक्ष्मतम भाग है वह वाक् हो जाता है। अतः मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमयी है।

छान्दोग्योपनिषद् ६/५

शिवभक्त पर अहैतुकी प्रभु कृपा

केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने सन् उन्नीस सौ नब्बे के दशक में अपने योग प्रचार कार्यक्रमों की झड़ी सी लगा दी थी। श्री सद्गुरू देव भगवान रात भर यात्रा किया करते थे एवं निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर प्रातःकाल से ही दादा स्वरूप की आरती पूजा एवं योग प्रचार कार्यक्रमों में इतने व्यस्त एवं तल्लीन हो जाते थे कि भोजन एवं विश्राम का समय बचता ही नहीं था। थके हुए शरीर से सदैव श्री प्रभु जी का कृपा चरित्र वर्णन किया करते थे। उनका कोई प्रिय शिष्य जब उनसे विश्राम करने को जिद किया करता तो अपने मुखारविन्द से मधुर मुस्कान के साथ अपनी गम्भीर वाणी से कहते कि लल्ला ! मैं तो श्री प्रभु जी का एक सिपाही मात्र हूँ, अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उनका गुणगान करता रहूँगा तथा उनकी आज्ञा, जो हमें उन कृपा निधान ने दी है; योग विद्या का प्रचार एवं प्रसार किया करूँगा। श्री सद्गुरू देव जी महाराज ने अन्तिम श्वांस तक अपने इन वचनों का अक्षरशः पालन किया। श्री गुरूदेव भगवान के स्थूल शरीर के तिरोधान के बाद भी, वे कृपा निधान आस्तिक वृत्ति वाले साधकों को हर पल आध्यात्मिक एवं सांसारिक कार्यों में सदैव सहायता किया करते हैं। सन् उन्नीस सौ छानवे में श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम पर चैत्र शुदी नवमी को मनाये जाने वाले योग महामेला में जाने का सौभाग्य मिला था। बहुत बड़ी संख्या में साधक एवं योग जिज्ञासु इस पवित्र भूमि पर अक्षय पुण्य प्राप्त करने तथा आध्यात्मिक आनन्द लाभ का अनुभव करने के लिए धाम की पवित्र भूमि पर अपना निवास बनाये हुए थे। पवित्र नवमी तिथि के दिन, जिस दिन दादा गुरूदेव का अवतार दिवस है, श्री प्रभुजी एवं महाप्रभु जी के स्वरूपों का पूजन एवं माल्यार्पण करने वालों की बहुत बड़ी लम्बी कतार लगी थी। मैं भी श्री सिद्धगुफा के सामने कदम्ब के पेड़ के नीचे बैठकर यह इन्तजार कर रहा था कि जब भीड़ कम हो जाये तो आरती पूजा एवं माल्यार्पण के लिए पीछे कतार में खड़ा होऊँ। मेरे वहाँ पहुँचने के बाद उस स्थान पर तीन दम्पत्ति जो बातचीत से अनजाने मालूम पड़ रहे थे, आकर वहीं बैठ गये एवं भीड़ छँटने का इन्तजार करने लगे। श्री गुरूदेव भगवान के स्थूल शरीर का दर्शन लाभ इन दम्पत्तियों को नहीं मिल पाया था परन्तु गुरूदेव भगवान की कृपाओं से वे ओतप्रोत लग रहे थे। उन सबों में जो सबसे उम्रदराज व्यक्ति था उसकी अवस्था करीब पचास पचपन साल की थी, वह अन्य सभी साथ आये साधकों को, श्री गुरूदेव भगवान के स्वरूप की तरफ इशारा करके समझा रहा था कि सफेद दाढ़ी वाले छोटे प्रभु जी ने हम पर कृपा कर हमलोगों को धन्य बना दिया। आराध्यदेव जी के प्रति ऐसे आदर सूचक एवं कृतज्ञतापूर्ण उसकी बात सुनकर मेरे मन में यह भाव आया कि श्री गुरूदेव भगवान ने अवश्य ही इस परिवार पर कोई विलक्षण कृपा की है, जिससे सभी लोग श्रद्धा के पुतले बने हुए हैं। मैंने उस परिवार के सभी सदस्यों को सप्रेम जय गुरूदेव किया एवं फिर मुखिया से निवेदन किया कि भाई जी, आप ने श्री चरणों में योग दीक्षा कब प्राप्त की है। हमारी ये बात सुनकर उनकी आँखें नम हो गयी, उनका कण्ठ भर आया एवं उन्होंने सिसकते स्वर में कहा कि भाई जी! हमारा इतना

भाग्य कहाँ है कि उन करूणा सागर से स्थूल रूप से योग दीक्षा ग्रहण कर सकूँ। मैं तो पहली बार इस धाम पर आया हूँ और आनन्द लाभ उठा रहा हूँ। हमारे गाँव में इनके आठ-दस शिष्य हैं उन्हीं लोगों के साथ हम लोग भी आये हैं। वैसे इनकी शक्ति अपरम्पार है एवं इनसे बड़ा कोई योगी हो ही नहीं सकता। हमने उनसे निवेदन किया कि ऐसी कौन सी बात है कि आप ऐसा कह रहे हैं। उन्होंने जो रहस्य बतलाया वह निम्न प्रकार है। उनकी बात को उन्हीं के शब्दों में लिखने का प्रयास किया गया है। उन्होंने बतलाना आरम्भ किया कि-

भाई जी, मेरा नाम सर्वजीत शर्मा है, मैं जिला एटा का निवासी हूँ। ये हमारी धर्मपत्नी श्रीमती यशोदा देवी हैं। मेरी अवस्था पचपन वर्ष एवं इनकी अवस्था करीब बावन वर्ष है। यह हमारा सुपुत्र विपिन बिहारी शर्मा एवं यह इनकी धर्मपत्नी अर्थात् हमारी पुत्रवधू श्रीमती कल्पना शर्मा हैं। यह हमारी बेटी श्रीमती शकुन्तला एवं यह इनके पतिदेव श्री कृष्ण मुरारी शर्मा हैं। यह छोटा बालक जिसका नाम घनश्याम है हमारी बच्ची शकुन्तला का पुत्र है। ये मेरे दामाद जी जिला जज (जनपद न्यायाधीश) के यहाँ पेशकार हैं तथा इनकी शादी हुए करीब आठ साल हो रहे हैं एवं यह इनका पुत्र है। बस यही मेरा पूरा परिवार समझिये। अपने पुत्र विपिन बिहारी की शादी हमने कल्पना के साथ सन् तिरानवे में की थी। उसी साल एक दुर्घटना घटी, जिसमें हम लोगों को सजा निश्चित थी यदि योगीराज जी ने आकर हमारी सहायता नहीं की होती। मैंने प्रश्न किया कि भाई जी, श्री सद्गुरुदेव भगवान ने तो दिनांक पच्चीस जून सन् उन्नीस सौ नब्बे को अपना लिलावसान कर लिया था और आप कह रहे हैं कि योगीराज जी ने तिरानवे में आपकी स्थूल रूप में आकर सहायता की, यह तथ्य हमारी समझ में नहीं आ रहा कि यह कैसे सम्भव है। श्री सर्वजीत शर्मा जी ने कहा कि भाई जी, सिद्ध योगी कालातीत होता है और वह जब जिसको सहायता चाहे कर सकता है, चाहे वे स्थूल रूप से पृथ्वी परे भले ही न रहता हो। श्री शर्मा जी ने बतलाना आरम्भ किया कि उन्तीस अप्रैल सन् तिरानवे को अपने बच्चे की शादी हमने किया एवं पुत्रवधू लेकर बारात के साथ मैं अपने घर आ गया। यह शादी एटा जिले में ही अपने गाँव से मात्र सात किलोमीटर की दूरी पर हमने किया है। हमारे परिवार में हमारे पूज्य पिताजी भी अभी मौजूद हैं एवं उनकी अवस्था इस समय करीब चौरासी साल है। गाँव के बाहर करीब दो फर्लांग की दूरी पर हमारे पिताजी ने एक छोटा परन्तु भव्य मन्दिर बनवाया है एवं उसमें भगवान शंकर के मूर्ती की प्राण प्रतिष्ठा करायी है। वे उसी मन्दिर पर रात दिन रहा करते हैं, एवं इस समय भगवान शंकर का आरती पूजन, पंचाक्षरी मंत्र का जप और ध्यान ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। पूरा परिवार सानन्द जीवन यापन कर रहा था कि उन्नीस सौ चौरानवे के बीस जनवरी को एक दुर्घटना घटित हुई। अपराहन करीब दो बजे का समय रहा होगा। मैं मकान के बाहरी हिस्से में अपनी धर्मपत्नी के साथ विचार विमर्श कर रहा था कि मकान के अन्दर बन्दूक चलने की आवाज आयी। मैं अपनी पत्नी के साथ उस कमरे में गया जिस कमरे में हमारी बहू रहती थी। वहाँ जाकर हम लोगों ने जो दृश्य देखा तो अवाक् रह गये। लड़के के हाथ में बन्दूक थी एवं वह किंकर्तव्यविमूढ़ भाव से खड़ा था। उसके सामने करीब पाँच फुट की दूरी पर हमारी बहू जमीन पर गिरकर छटपटा रही थी तथा उसके पेट के बायें हिस्से में गोली लगी थी। जहाँ से रक्त

बह रहा था। मेरी समझ में कुछ नहीं आया एवं मैंने बच्चे को दो थप्पड़ जोर-जोर से दाहिने गाल पर मारा तथा बन्दूक छीनकर बेड पर रख दिया। उसी समय हमारी बहू ने कहा कि पिताजी इन्हें मत मारिये, इसमें इनका कोई कसूर नहीं है। आप की यह दो नाली बन्दूक खूँटी पर टंगी थी, मैंने ही उतारा एवं इनसे कहा कि बन्दूक कैसे चलायी जाती है, आइये आज सीखा जाय। मैंने बन्दूक कन्धे से लगाकर ट्रिगर दबाया तो गोली नहीं चली। इसके बाद इन्होंने परिहास में ही हमसे बन्दूक छिनकर कन्धे पर लगाकर ट्रिकर दबाया। बन्दूक की नाल आंगन की तरफ थी परन्तु गोली चलने के साथ नाल स्वयं झटके से हमारी तरफ हो गयी तथा मुझे गोली लग गयी। इसमें हमारे पतिदेव का रंचमात्र भी दोष नहीं है। यह बात मैं पूरी सत्यता से जानती हूँ। हम लोगों में आपस में प्रेम भी बहुत है तथा हम दोनों एक दूसरे के लिए प्राण तक दे सकते हैं। अतः इन पर यह शंका करना कि इन्होंने जानबूझ कर मुझे गोली मारी असत्य भ्रामक एवं इनके साथ सरासर अन्याय है। अतः आप से मेरी यही प्रार्थना है कि इन्हें मारा पीटा न जाय। आप हमें अस्पताल पहुँचाने का प्रबन्ध करने की कृपा करें। अपनी पुत्रवधू के मुख से ये शब्द सुनकर मुझे कुछ सांत्वना मिली एवं मैं उसे गाड़ी से लेकर जिला सदर अस्पताल एटा पहुँच गया। अस्पताल पहुँचते-पहुँचते बहू बेहोश हो चुकी थी, हमने तथा बच्चे ने घटना का विवरण वहाँ नोट कराया एवं उसके बाद बहू का इलाज विधिवत् आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम पेट से गोली निकाली गयी एवं उसके बाद सुई दवाई आरम्भ हुई। पूरी रात्रि वह बेहोश ही रही। प्रातःकाल करीब दस बजे उसे थोड़ा होश आया। उस समय तक यह घटना हमारे पूरे गाँव में, हमारी पुत्रवधू के गाँव में या एक शब्द में कहा जाय तो पूरे जिले में फैल चुकी थी। हम तो पूरी तरह आश्वस्त थे कि यदि हमारी बहू से कोई इस घटना के बारे में पूछेगा तो वह यही बात बतलायेगी, जो उसने हमसे बतलाया था। अतः मैं तथा मेरा पुत्र अच्छी से अच्छी दवा एवं डाक्टर से उसका इलाज कराने के लिए अस्पताल से बाहर ही टहलते रहे। उधर उसके होश आने पर बहू के ननिहाल एवं उसके घर वाले उससे हकीकत जानने के बाद भी उसका बयान बदलवाने का प्रयत्न करते रहे। यद्यपि बहू को होश आ गया था परन्तु वह डाक्टरों की राय के अनुसार अभी खतरे में ही थी। अतः डाक्टरों की परामर्श एवं पुलिस की इच्छानुसार एक मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में हमारी बहू श्रीमती कल्पना शर्मा की मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया गया। उसने बयान दे दिया कि हमरे ससुराल वाले और अधिक दहेज माँग रहे थे। इस बात के लिए वे लोग हम पर दबाव देकर मायके वालों से दो लाख रुपया दहेज की माँग कर रहे थे, जब मैं इस बात के लिए राजी नहीं हुयी तो हमारे पति ने हमें मारने की नियत से गोली मार दी। उस समय हमारे श्वसुर एवं उनकी पत्नी दरवाजे पर बैठकर यह पहरा दे रहे थे कि कोई आदमी घर के अन्दर प्रवेश न कर सके। अपना बयान समाप्त होते-होते हमारी पुत्रवधू फिर बेहोश हो गयी। अपने मायके वालों के प्रेम व दबाव में आकर अपना बयान बिल्कुल असत्य दर्ज कराया। बहू के इस प्रकार के बयान दर्ज कराने के बाद पुलिस के अधिकारी एवं कर्मचारी हम लोगों को गिरफ्तार करने के लिए ढूंढने लगे। हम लोग जिला सदर अस्पताल के आस-पास तो थे ही अतः गिरफ्तार हो गये। हमारी पुत्रवधू ने अपना बयान बदल दिया है और हम लोग गिरफ्तार हो गये हैं। यह खबर जंगल में लगी आग की तरह पूरे जिले में फैल गयी एवं हमारा

गाँव भी इससे अछूता नहीं रहा। हमारी धर्मपत्नी घर में ताला बन्दकर हमारी लड़की के ससुराल चली गयी जो अपने पतिदेव के साथ शहर में ही किराये के मकान में रहती थी। हम लोग जिस दिन गिरफ्तार हुए उसके बाद दो दिन छुट्टी पड़ रही थी अतः हम लोगों की जमानत न हो सकी। तीसरे दिन हमारे दामाद के अथक प्रयास एवं सहयोगियों की सहायता से हमारी जमानत हुई एवं मैं सायंकाल करीब साढ़े पाँच बजे रिहा हुआ। मैं उसके बाद अपने दामाद के किराये वाले मकान पर गया एवं फिर सात बजे अपने घर जाने के लिए ट्रेन पकड़ने रेलवे स्टेशन गया। तब तक काफी अंधेरा हो गया था एवं पानी पड़ रहा था जिससे जाड़ा लग रहा था। स्टेशन जाकर हमने टिकट खरीदा एवं करीब आठ बजे एटा आगरा पैसेन्जर आयी जिस पर सवार होकर हम अपने गाँव की यात्रा आरम्भ की।

पानी पड़ने तथा अत्यधिक ठण्ड पड़ने के कारण गाड़ी में बहुत ही कम मुसाफिर यात्रा कर रहे थे। द्वितीय श्रेणी की मेरी बोगी में मात्र आठ दस सवारी बैठी थी एवं मैं आमने-सामने सीट वाली केबिन में अकेला बैठा था। ठण्ड के कारण दाँत कट-कट कर रहे थे। जब ट्रेन चलना आरम्भ की तो दरवाजे से प्रवेश कर एक नाटे कद, लम्बी सफेद दाढ़ी, पूरी बाँह का धोती कुर्ता पहने हाथ में छड़ी लिये एवं कन्धे पर सफेद ऊनी चादर लिये मालदार रईस सेठ की शक्ल का एक आदमी चलते हुए हमारे केबिन में आये एवं हमारे सामने वाली सीट पर जिस पर चार आदमी के बैठने की जगह थी, हमारे सामने कौने की सीट पर बैठ गये। बैठते हुए उन्होंने मधुर मुस्कान के साथ कहा कि लल्ला, तुम बहुत उदास दिखलायी दे रहे हो। मैंने कहा कि सेठजी, मैं उदास तो हूँ परन्तु आप बैठिये, आप कर ही क्या सकते हैं। उस सेठ की तरह दीखने वाले व्यक्ति ने कहा कि लल्ला। यदि तुम हमसे बिल्कुल सत्य बात बतलाओगे तो हो सकता है मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ। शर्माजी ने कहा कि, मैं आप से क्या बतलाऊं ? अभी तक तो यही सुनायी देता था कि मनुष्य धोखा दे रहा है, दगा कर रहा है, विश्वासघात कर रहा है और सेवा तथा उपकार के बदले अपकार करता है परन्तु अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि भगवान भोलेनाथ भी अन्याय का ही साथ दे रहे हैं। इन वाक्यों को कहते समय उनका पूरा शरीर ठण्ड के कारण काँप रहा था तथा उनके दाँत कट-कट की आवाज कर रहे थे। सेठजी ने अपनी ऊनी चादर इनके ऊपर फेंकते हुए कहा कि इससे अच्छी प्रकार अपना पूरा शरीर ढक लो, मात्र दस मिनट में तुम्हारी ठण्ड दूर हो जायेगी, उसके बाद तुम हमें पूरी बात बतलाना। उनकी आज्ञा मानकर शर्मा जी ने ऊनी चादर से अपना पूरा शरीर ढक लिया एवं उन्हें आश्चर्य तो तब हुआ जब मात्र दस मिनट में उनके पूरे शरीर में गर्मी आ गयी। फिर शर्मा जी ने स्थिर मन से बतलाना आरम्भ किया कि हमें तो इस बात का महान दुःख है कि भगवान शंकर भी अन्याय एवं असत्य का साथ दे रहे हैं। उस बेचारे शर्माजी को क्या पता कि उसके सामने वाली सीट पर कौने में बैठे धनवान सेठ की तरह दीखने वाले धोती, कुर्ता, चादर एवं हाथ में छड़ी धारण करने वाले महापुरुष कोई अन्य नहीं अपितु स्वयं साक्षात् भगवान शंकर ही हैं। उन्होंने प्रश्न किया कि भगवान शंकर ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, भगवान शंकर ने तुम्हारे साथ असत्य एवं अन्याय का क्या बर्ताव किया है कि तुम उनके व्यवहार से इतने मर्माहत एवं दुःखी हो। श्री शर्माजी ने कहा कि

यदि आप सुनना ही चाहते हैं तो सुनिये-मैं भगवान शंकर की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि आप से जो कुछ कहूँगा, बिलकुल सत्य-सत्य ही कहूँगा, एक शब्द भी असत्य नहीं कहूँगा। हमने अपने मकान से बाहर खेत में सड़क के किनारे भगवान शंकर का छोटा परन्तु भव्य मन्दिर बनाकर उसमें भगवान शंकर की मूर्ति बैठाकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा की है हमारे पूज्य पिताजी उसी मंदिर के बगल में बनी एक कोठरी में रात-दिन निवास करते हैं तथा उनका अत्यधिक समय भगवान शंकर की आरती, पूजन एवं मंत्र जप में ही व्यतीत होता है। एक प्रकार से कहा जाय तो हमारे पिताजी का जीवन शिवमय ही हो गया है। हमारे परिवार का जीवन बड़ा ही सुखमय व्यतीत हो रहा था। हमने अपनी लड़की की शादी कर दी है एवं लड़के की शादी भी कर दी है। इस प्रकार हमारे ऊपर कोई सांसारिक जिम्मेदारी नहीं है। बीस जनवरी सन् उन्नीस सौ चौरानवे को पुत्र एवं पुत्रवधू के परिहास में ही एक दुर्घटना घटी जिसमें पुत्रवधू को बन्दूक की गोली लग गयी। उस समय जब मैंने अपने लड़के को ताड़ना देना आरम्भ किया तो कष्ट से छटपटा रही हमारी पुत्रवधू ने हमसे स्वयं कहा था कि पिताजी, इन्हें मत मारिये, इसमें इनको कोई दोष नहीं है। परन्तु सदर अस्पताल में अपने बयान में उसने सभी असत्य एवं मायके वालों द्वार सिखलायी गयी मनगढ़न्त बातें दर्ज कराकर हमें, हमारी पत्नी एवं बच्चे के मृत्यु के मुख में भेजने का प्रपंच रच दिया है। अब हम लोगों को सजा निश्चित है। इस प्रकार पूरी घटना का वर्णन करने के बाद श्री शर्मा जी ने सेठ से दिखने वाले महापुरुष से कहा कि हमारे इष्ट देवता भगवान शंकर हैं, कम से कम इतना कार्य ही कर दिये होते कि हमारी पुत्रवधू दुर्घटना की सत्य-सत्य बातें-बयान करती। इसी बात को सोच सोचकर मुझे भगवान शंकर पर क्रोध आ रहा है एवं सोच रहा हूँ कि भगवान शंकर भी विश्वसनीय नहीं हैं। इतना कहते हुए श्री शर्माजी का कण्ठ भर आया एवं उनकी आँखों से अश्रुधारा चलने लगी। सेठ से दिखने वाले महापुरुष ने अपने कुर्ते से उनकी अश्रुधारा पोंछी एवं गम्भीर वाणी में बोले-लल्ला ! यदि तुमने हमसे घटना का सत्य-सत्य वर्णन किया है तो मैं यह वचन देता हूँ कि तुम सभी बाइज्जत, बेदाग बच जाओगे। जब कत्ल का यह केस कोर्ट में जायेगा तो तुम्हारी पुत्रवधू वहाँ वही बयान देगी जो तुम्हारे सामने उसने कहा था। कोर्ट में वह यह भी बतलायेगी कि उसने अपने मायके वालों के दुराग्रह के कारण असत्य बयान दिया था। उसके सास, श्वसुर बहुत ही नेक इंसान हैं एवं उसके साथ अपनी पुत्री की तरह व्यवहार करते हैं। उनकी बात सुनकर श्री शर्माजी के व्यग्र मन को शान्ति एवं सांत्वना तो मिली परन्तु विश्वास नहीं हुआ। इसी बीच उस महापुरुष ने फिर कहा कि इस समय हमारी बातों पर तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है परन्तु मेरी बात जब सही घटित होगी तो तुम्हें पूर्ण विश्वास हो जायेगा।

श्री शर्माजी ने प्रश्न किया कि आप को जाना कहाँ है। उन्होंने बतलाया कि जाना तो हमें श्री सिद्धगुफा सवांई ही है। श्री शर्माजी श्री सिद्धगुफा सवांई के नाम से परिचित तो थे परन्तु उसका दर्शन नहीं किये थे। श्री शर्माजी ने कहा कि उस गुफा पर एक सिद्ध योगिराज जी रहते थे, उनके अन्दर अपार आध्यात्मिक शक्ति थी उनकी मृत्यु हुए करीब तीन चार साल हो रहे हैं। अब वहाँ कोई महात्मा वगैरह नहीं है। यह गाड़ी रात के करीब साढ़े नौ बजे मितावली पहुँचेगी जहाँ से उतरकर

आपको संवाई गाँव जाना पड़ेगा। अँधेरी रात है, पानी पड़ रहा है मेरा आप से निवेदन है कि आप हमारे साथ ही अगले स्टेशन पर उतरकर हमारे घर चलें, रात्रि विश्राम आज हमरे यहाँ ही करें। सवेरे उठकर संवाई चले जाइयेगा। पहले तो वे इस बात पर राजी नहीं हुए परन्तु जब श्री शर्माजी अत्यधिक प्रार्थना करने लगे तो वे इस बात पर राजी हो गये कि रात्रि विश्राम उनके घर पर करेंगे। रात्रि के करीब साढ़े आठ बज रहे थे, श्री शर्माजी का स्टेशन आ गया था अतः उस महापुरुष के साथ वे गाड़ी से उतर गये। तेज पानी पड़ रहा था अतः थोड़ी देर स्टेशन पर रुके एवं पानी की रफ्तार जब कुछ कम हुई तो करीब पन्द्रह मिनट पैदल चलकर दोनों लोग शर्माजी के घर पहुँच गये। मकान में ताला बन्द था जिसकी चाबी बगल के पट्टीदार के यहाँ थी, जिसने चाबी लाकर दिया। श्री शर्माजी ने मकान का ताला खोला। दो कोठरियाँ बरामदे में खुलती थीं, उसे खोलकर कुर्सी निकालकर महापुरूष को बैठाया। हाथ मुँह धोने के लिये पानी लाकर दिये एवं फिर प्रार्थना किये कि भोजन क्या लेंगे। आपने बतलाया कि लल्ला ! उपली (कण्डा या गोइठा) जलाओ, टिक्कर लगाकर आलू के भरते से खाया जायेगा। श्रीशर्मा जी ने उपली जलायी, आटा गूँधा एवं आग में ही भरते का आलू डाल दिया। आलू पक जाने पर सेठ से दिखने वाले महापुरुष ने भरता बनाया एवं श्रीशर्माजी ने आसन लगाया एवं दोनों आदमी भोजन किये। अब इसके बाद रात्रि विश्राम का समय था। मेहमानों के ठहरने वाली कोठरी की तरफ इशारा करके श्री शर्माजी ने कहा कि, इस कोठरी में आप का बिस्तर लगा देते हैं आप आराम करें। उस महापुरुष ने कहा कि लल्ला हम प्रयोग किये हुए बिस्तर पर न तो बैठते हैं और न सोते हैं। श्री शर्माजी ने कहा कि हमारे लड़के की शादी में जो गद्दा, रजाई एवं बिस्तर मिला है वह नया ही ज्यों का त्यों रखा है, मैं उसे तख्त पर लगा देता हूँ। महापुरूष ने कहा कि तख्त को पानी से धोकर साफ कर लो, फिर स्वच्छ कपड़े से पोंछकर बिस्तर लगा दो। श्री शर्माजी ने बतलायी विधि से बिस्तर लगा दिया। महापुरुष बिस्तर पर आराम करने गये एवं शर्मा जी से कहे कि लल्ला ! मैं ठीक पौने चार बजे सुबह उठकर चला जाऊँगा।

श्री शर्मा जी आग के पास बैठकर गर्मी ले रहे थे उसी बीच उनका हाल चाल जानने चार पाँच पड़ोसी भी आ गये। शर्माजी ने अपने पड़ोसियों से पूरी बात बतलायी एवं नये आने वाले मेहमान से जो बात हुई थी उसे भी सविस्तार बतलाया। यह बात सुनकर उन सबों को भी श्री सिद्धगुफा वाले महापुरुष के विषय में जानने की इच्छा हुई। उस गाँव में हमारे कुछ गुरूभाई बहन भी निवास करते थे। अतः विधान यह बना कि ब्रह्म मुहूर्त में ही श्री संवाई धाम से दीक्षित लोगों को खबर देकर बुला लिया जायेगा ताकि वे पहचान सकें कि यह महापुरुष संवाई धाम से सम्बन्धित ही तो नहीं हैं। श्री शर्माजी ने कहा कि वैसे तो इन्होंने कहा है कि प्रातः काल पौने चार बजे ही चला जाऊँगा परन्तु मैं दरवाजे में बाहर से कुण्डी लगा देता हूँ ताकि जब वे उठें तो दरवाजा खोलने के लिए हमें आवाज लगायें। पड़ोसियों से बात होते-होते रात के करीब साढ़े बारह बज गये एवं सभी लोग रात्रि विश्राम करने अपने घर चले गये। बरामदे में खुलने वाली एक कोठरी में महापुरुष सोये थे एवं दूसरे में श्री शर्माजी। श्री शर्माजी ने सोने से पूर्व मेहमान वाली कोठरी के दरवाजे में बाहर से कुण्डी लगा दी जिससे दरवाजा खोल कर बाहर न जा सकें। भोर के ठीक पौने चार बजे श्री शर्मा जी को कोठरी के

दरवाजे पर थपथपाने की आवाज आयी। उन्होंने दरवाजा खोला तो सामने मेहमान महापुरुष को देखकर महान आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने पूछा कि दरवाजा तो बाहर से कुण्डी लगाकर बन्द था आप बाहर कैसे आ गये। उस महापुरुष ने कहा कि लल्ला ! हम तो बाहर आ ही गये और अब श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम जा रहे हैं। हमारी कही सब बातें सत्य होंगी। जब तुम कत्ल के केस से छूट जाना तो श्री सिद्धगुफा संवाई धाम का दर्शन अवश्य-अवश्य करते रहना। इतना कहने के बाद वे बोले कि मैं जा रहा हूँ, थोड़ी दूर तक श्री शर्माजी उनको पहुँचाने गये परन्तु मात्र चौदह पन्द्रह कदम चलने के बाद वे महापुरुष अन्तर्ध्यान हो गये।

कत्ल का यह केस चौरानवें से शुरू होकर पंचानवे में समाप्त हुआ। फैसला इनके पक्ष में हुआ। श्री शर्माजी की पुत्रवधू ने अपना मृत्यु पूर्व बयान कोर्ट में बिल्कुल ही बदल दिया। उसने यह भी बतलाया कि वह बयान हमने मायके वालों के सिखलाने पर दिया था। जब श्री शर्मा जी अपने बच्चों के साथ बेदाग और बाइज्जत कत्ल के केस से रिहा हुए तो इन्हें ट्रेन में मिले मेहमान सेठ का स्मरण बार-बार हो रहा था कि सेठ से दिखने वाले ये महापुरुष कोई सिद्ध योगिराज ही रहे होंगे। उनकी बात अक्षरशः सत्य हुई है।

सन् उन्नीस सौ छानवें में ये पहली बार चैत्र शुदी नवमी को अपनी धर्मपत्नी एवं अपने गाँव के सत्संगी बच्चों के साथ, जो संवाई आश्रम से सम्बन्धित थे, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम पहुँचे। जब ये श्री महाप्रभु जी के स्वरूप को माल्यार्पण कर आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के स्वरूप को माल्यार्पण करने लगे तो बीच में ही रुककर बड़े गौर से उस स्वरूप को देखें। माला उनके दोनों हाथों में ही पड़ी रह गयी और वे फूट-फूट कर रोने लगे। ये स्वरूप के सामने खड़े होकर करीब पन्द्रह मिनट तक विलाप करते रहे। उनके गाँव के हमारे किसी गुरुभाई ने उनके हाथ से माला लेकर श्री गुरुदेव भगवान के स्वरूप को पहनाया एवं इन्हें लेकर गाँव के सभी लोग एकान्त स्थान पर गये एवं इनकी सामान्य स्थिति आने पर श्री प्रभुजी द्वारा की जाने अहैतुकी कृपाओं का इन्होंने गद्गद् कण्ठ एवं अश्रुपूरित नेत्रों से कई बार वर्णन किया। इनके हृदय पटल पर आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के मिलने के समय से लेकर बिछुड़ने के समय तक की सभी घटनायें एक-एक कर ताजी होती गयी। ये बार-बार यह कहकर रो रहे थे कि अगाध करुणा सागर श्री गुरुदेव जी महाराज हमारे घर रात्रि निवास किये एवं करीब आठ घण्टे तक हमारे साथ रहे पर मैं उन्हें पहचान नहीं सका। और तो और मैं उनका चरण स्पर्श कर प्रणाम भी नहीं कर सका यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है। हमारे गुरुभाई बहन उन्हें समझा रहे थे कि उनकी आप के ऊपर महान कृपा है। उनका स्मरण चिन्तन करते रहिये वे फिर आपको दर्शन देंगे।

आराध्य देव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के विशेष कृपापात्र श्री सर्वजीत शर्मा जी ने श्री प्रभु जी से स्थूल रूप से योग दीक्षा ग्रहण नहीं की है। उनके प्रथम दर्शन से आज तक उनकी कृपायें श्री शर्मा जी के परिवार का सब प्रकार से कल्याण कर रही है। लगता तो ऐसा है कि श्री गुरुदेव एवं महाप्रभु जी इतने कृपालु हैं कि श्री राम, कृष्ण, दुर्गा, हनुमान और शिव आदि अन्यान्य किसी भी देवी देवताओं की पूजा करने वाले प्राणियों पर उनकी कृपायें सदैव होती ही रहती हैं। वे प्राणी महान भाग्यशाली हैं जिन्होंने उनकी अशरण शरण ग्रहण की है।

***

पद

भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

गुरुजी मेरे ! मैं तुम्हारे आधीन।
जैसे जल पर आश्रित रहती सदा विचारी मीन।।
तुम ही मेरा भोजन पानी तुम बिस्तर कालीन।।
संग हमारो तब से जब से रचना रची नवीन।।
रहूँ नीर में फिर भी मेरा मनबुद्धि चित्त मलीन।।
माया-बगुली निशिदिन ताके रहतु हृदय गमगीन।।
जग-मछुआरा मुझे पकड़ने डाले जाल महीन।।
क्रोध द्वेष के गर्म रेत पर पटके पकड़ जमीन।।
जल्दी मोय बचाओ सद्गुरु होय भरोसो छीन।।
दीनबन्धु तुम, दया सिन्धु तुम, हो तुम परम प्रवीन।।

महात्मा सिद्धपुरुष ईश्वर के रूप होते हैं। वे केवल स्पर्श से, एक कृपाकटाक्ष से, केवल संकल्पमात्र से भी श्रद्धासम्पन्न साधको को कृतार्थ करते हैं पर्वत प्राय पापों का बोझ ढोने वाले भ्रष्ट जीव को भी अपनी दया से वे क्षणार्ध में पुण्यात्मा बना देते हैं।

नेत्र-ज्योति-प्रकाशिनी-नेति-३

नेति-क्रिया की आवश्यकता

(गतांक से आगे)

आमाशय जो कि भोजन पचाने का कार्य कर रहा था, उल्टा कार्य प्रारम्भ कर देता है। इसी प्रकार विचार-शक्ति भी आपके शरीर पर अपना प्रभाव सदैव डालती रहती है। विचार-शक्ति का प्रभाव जिस प्रकार शरीर के अन्य अंगों पर पड़ता है, उसी प्रकार फेफड़ों पर भी पड़ता है। जो मनुष्य दुःख और क्लेशों से व्याकुल हो उसके श्वास कभी छोटे व कभी लम्बे होंगे, और उसे व्याकुलता अनुभव होगी क्योंकि मानस-शक्ति फेफड़ों के कार्य को रोक कर बाधा उत्पन्न कर देती है। जब प्रसन्नता के विचार उत्पन्न होते हैं, तो उस समय श्वास गहरे और लम्बे हो जाते हैं। श्वासों की समगति में, जो कि प्रेम से भरी होती है, अमृत-शक्ति विराजमान है। उसी अमृत शक्ति का प्रभाव,श्वासों के साथ अन्दर प्रवेश करता है। नाड़ियाँ उन श्वासों को जो उनसे टकराते हुए निकलते हैं, अमृत-जल बना देती है। उस अमृत-जल का स्वाद ऐसा मधुर होता है, जैसे गाय का ताजा दूध। विचार जितने ही उच्च होंगे, आकाश से उतनी ही अधिक शक्ति का आकर्षण होता है जितनी उच्च शक्ति का आकर्षण होता है, उतनी ही अधिक शक्ति वाला अमृत-जल नाड़ी-मण्डल को प्राप्त होता रहता है। विचारों के साथ जो लम्बे श्वास होते हैं, ये नाड़ियों से टकराते हैं। उन नाड़ियों का सम्बन्ध कपाल से होता है। श्वास जब नाड़ियों से टकराते हैं तो नाड़ियाँ कपाल के उस भाग को सूचना देती हैं, जिसमें अजर-अमर करने वाली ईश्वरीय शक्ति होती है। फिर कपाल उन नाड़ियों से इस प्रकार का बलदायक अमृत-जल उत्पन्न कर देता है, जो शरीर को अजर-अमर बनाने में समर्थ होता है। ईश्वरीय शक्ति लिए हुए जितने ही उच्च विचार नाड़ियों से टकरायेंगे, उतना ही शक्तिशाली अमृत-रस उत्पन्न होगा। जिस प्रकार मनुष्य उच्च विचारों से अमृत उत्पन्न कर लेता है, उसी प्रकार दूषित विचारों से मल (नजला)। यह मल शरीर को निर्बल कर देता है और रोग उत्पन्न कर देता है क्योंकि गन्दे विचारों का प्रभाव श्वासों के आगमन व प्रत्यागमन से प्रसन्नता को सम और स्थिर रख सकता है।

सम भाव से चलने वाले श्वासों में प्रसन्नता ही सम भाव रखने वाली शक्ति उत्पन्न करती है और छोटे-बड़े श्वास निर्बल और बलवान् (सुखी अथवा दुखी) अर्थात् विषम विचारों को उत्पन्न करते हैं। कुछ समय तक यही अवस्था रहने पर नाड़ियों से शरीर को पुष्ट रखने वाली ईश्वरीय शक्ति नष्ट हो जाती है। उसके नष्ट होने से शरीर में मल उत्पन्न हो जाता है। वही मल नजला आदि के नाम से पुकारा जाता है। उसी नजले-(कफ) का प्रभाव जहाँ पड़ता है, वहीं रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः कफ का प्रभाव कपाल, नेत्र, कर्ण इत्यादि पर पड़ता है। यह ध्यान रहे कि कफ वाली नाड़ियाँ कपाल में भी कार्य कर रहीं हैं। जिनके आधार पर मनुष्य पढ़ता या विचार करता है। ऐसा कार्य करने पर मस्तक में गर्मी भी हो जाती है। उस गर्मी को शान्त करने का कार्य भी यही नसें

करती हैं। जिन नाड़ियों में अमृतमयी शक्ति होती है, उन्हें पढ़ने या मनन करने में कोई कष्ट नहीं प्रतीत होता, और न उन्हें कभी सुस्ती या निद्रा ही सताती है। जो कुछ पूछा जाता है उसका उत्तर अन्दर से उसी समय मिल जाता है। इसी को आत्मा की आवाज़ (प्रतिध्वनि) कहते हैं। क्योंकि अमृत की शक्ति से उन्हें हर समय सहायता मिलती रहती है। पर जिनके अन्दर मल से अशुद्ध हुई नसें कार्य करती हैं, उनकी वे नसें उस गर्मी को (जो कि विचार से उत्पन्न हो जाती हैं) शान्त नहीं कर सकतीं, अपितु गर्मी को और बढ़ा देती है। उसी गर्मी के कारण सुस्ती, निद्रा और थकावट अनुभव होने लगती है। तो वे अपने लक्ष्य स्थान पर कदापि नहीं पहुँच पाते। इसी प्रकार स्मरण-शक्ति भी अपना कार्य करती है और इसका सम्बन्ध भी उन्हीं नाड़ियों के साथ होता है।

अब आप नेत्रों की ओर ध्यान दें। नेत्रों में भी चार विभाग हैं। उन्हीं नसों की सहायता से चक्षु अपना कार्य पूर्णतया करते रहते हैं। ये चार भाग हैं : १. आँखों की पलकें, २. आँखों के अन्दर की सफेदी, ३. आँखों के अन्दर की स्याही (पुतली), ४. पुतली के अन्दर की रोशनी। ये चारों विभाग इन्हीं नसों से उत्पन्न हुए अमृत रस द्वारा अपना कार्य भली भाँति करते हैं। आँखों की पलकों में वह रस जब तक गिरता है तब तक वे हिल-डुल सकती हैं। यदि यही रस गन्दा होता है तो चक्षु रोगग्रस्त हो जाते हैं। यथा कुक्करे, फोला, धुन्ध, इत्यादि। रस शुद्ध होने से कोई रोग समीप नहीं आता और मल स्वयं निकलता रहता है। मल यदि अधिक गन्दा हो तो यह अर्धशीर्ष पीड़ा का कारण बन जाता है। और शनैःशनैः मिरगी, पागलपन तथा कपाल के कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बाल भी इसी के कारण सफेद हो जाते हैं, यदि वह रस शुद्ध हो तो मस्तक की शक्तियाँ स्मरण-शक्ति, श्रवण-शक्ति, मनन-शक्ति अर्थात् कपाल की सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदीप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय तथा दांतों की जड़ों तक भी ये नसें कार्य करती हैं। शुद्ध रस पाने से दांत पुष्ट और आयुपर्यन्त स्थिर रहते हैं और अशुद्ध रस के कारण ही पायरिया आदि असाध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उस गन्दे रस के कारण ही कण्ठमाला, गले का सूजना, जिह्वा का फट जाना इत्यादि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। सदैव शुद्ध रस प्राप्त होने से कभी भी कोई रोग पास नहीं आ सकता। शुद्ध या अशुद्ध रस का ही प्रभाव शरीर को उज्ज्वल या निस्तेज बनाने में प्रधान कारण होता है इसी रस का प्रभाव कण्ठ से लेकर मस्तक पर्यन्त मुख्य कार्य करता रहता है। आप इसे भली भाँति विचारिये कि इसका शेष शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ? यह रस भोजन करने के समय अपने आप आमाशय में गिरता रहता है और आमाशय में गिरकर भोजन के साथ छोटी आँतों द्वारा रक्त में परिवर्तित होता रहता है। यदि वह रस शुद्ध तथा अमृतमयी शक्तियों से युक्त होगा तो रक्त में जाकर भी सात्विक शक्ति का ही उत्पादन करेगा क्योंकि समस्त शरीर रक्त के प्रभाव पर ही निर्भर है और रक्त इसी अमृत रस द्वारा होता है। इस कारण समस्त शरीर की रक्षा इसी अमृतरस द्वारा पुष्ट होता है। रक्त का संचार प्रत्येक रग (नस) में होता है तथा फेफड़े, जिगर, तिल्ली, गुर्दा, दिल अर्थात् रक्त संचार के कारण ही प्रत्येक अंग में बल रहता है, किन्तु यदि रक्त को शक्ति प्रदान करने वाला अमृत रस ही मल में परिवर्तित हो जाए तो रक्त-प्रवाह जिगर के काम में बाधा डालेगा।

(क्रमशः)

अपनी बात

विस्तार ही जीवन है और संकोच ही मृत्यु ! इसलिए सदैव प्रगतिशील रहने एवं जीवन को नये आयाम प्रदान करने का यत्न करना चाहिये। सतत् क्रियाशील रहने के लिए भी यह आवश्यक है। सिद्धयोग भी अपने जन्म-प्रदाता की थाती सम्हाले उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर निरन्तर अग्रगामी है। योग-साधन की ध्वज-वाहिका बनकर यह मासिक पत्रिका प्रतिपल अपने पाठकों को यौगिक जीवन का अवलम्बन करने के लिए प्रेरित किया करती है। असंख्य जिज्ञासु इसकी पाठ्य सामग्री से उत्प्रेरित होकर योग-साधना के मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक अग्रसित है। सिद्धयोग के इस सद्प्रयास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है मनीषी लेखकों की जिनकी रचनाऐं पत्रिका को पुष्ट करती है। रचनाकारों का आभार व्यक्त करते हुए हमारा उनसे आग्रह है कि वे अधिकाधिक रुचि लेकर और अधिक सारगर्भित एवं तत्वविवेचक योगपरक सामग्री हमें निरन्तर संप्रेषित करते रहें।

यद्यपि मुद्रण प्रक्रिया दिनोंदिन मंहगी होती जा रही है। तथापि हमारा सदैव यही प्रयत्न रहता है कि व्यय में अभिवृद्धि का एक न्यून भाग ही हम पाठकों पर डालें। जहाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने व्यावसायिक दृष्टिकोण अपना रखा है। वहीं हम आज के इस घोर अर्थयुग में भी श्री गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चल रहे हैं। कहीं पत्रिका एक व्यवसाय न बन जायें संभवत: इसीलिए उन्होंने किसी भी प्रकार का कोई विज्ञापन प्रकाशनार्थ स्वीकार न करने की नीति निर्धारित की थी। पत्रिका के लिए वित्तीय साधन जुटाने का मुख्य स्रोत पत्रिका के ग्राहक ही हैं। शेष कमी को पूरा करने के लिए सहयोग राशि के रूप में धन जुटाने का प्रयत्न रहता है। अत: ग्राहकों से आग्रह है कि यदि वार्षिक शुल्क अभी तक न भेजा हो तो अविलम्ब भिजवाने की व्यवस्था करें। नये ग्राहक बनाकर गुरु सेवा में भागीदार बनें। इस प्रकार वे अपने सहयोग की निरन्तरता बनाए रखकर सिद्धयोग की पावन परम्परा को शक्ति प्रदान कर सकते हैं। *पत्रिका प्राप्ति के लिए सदस्यता शुल्क आचार्य (डा०) रासलाल शर्मा ब्रह्मचारी के नाम अथवा व्यवस्थापक, सिद्धयोग कार्यालय, संवाई एत्मादपुर (आगरा) के पते पर ही भेजा जाना चाहिये।* केवल सिद्धयोग संवाई या व्यवस्थापक सिद्धयोग संवाई के नाम भेजे जाने पर मनीआर्डर हमारे कार्यालय तक नहीं पहुँच पायेगा। मनीआर्डर या तो वापस चला जायेगा या फिर अनधिकृत व्यक्ति के पास पहुँच जायेगा। इस प्रकार से हमारे पास आपका शुल्क न पहुँचने की स्थिति में हम आपको पत्रिका भेजने में असमर्थ होंगे।

पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाऐं वास्तव में मानव के सच्चे मित्र हैं। जो बिना किसी भेद-भाव और स्वार्थ के व्यक्ति का समयोचित और समयानुकूल दिग्दर्शन करते हैं-'सिद्धयोग' तो समर्पित ही है। मानवमात्र को उसके कल्याण की गारंटी देने वाले योग विज्ञान को। इसलिए इसके नियमित पाठक बनकर 'सिद्धयोग' के रूप में आप न केवल अपने यौगिक आध्यात्मिक उत्थान के लिए एवं विश्वसनीय दिग्दर्शक पायेंगे, अपितु इसकी वार्षिक/द्विवार्षिक/आजीवन सदस्यता प्राप्त कर हमारे इस सद्प्रयास में प्रत्यक्षत: सहभागी होंगे।

जय गुरुदेव।

–व्यवस्थापक

SIDDHYOG Regd. No. LAG.OOB

जुलाई 2002

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री ....

Jaya Karan Agrawal, Khoradia Bhawan, Lower Rajwari Road, JHARIA (Jh.K.) 828 111

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

(ईशावास्योपनिषद्–४)

वे परमेश्वर अचल, एक, और मन से भी अधिक तीव्र गतियुक्त हैं। सबके आदि ज्ञानस्वरूप या सबके जानने वाले हैं, इन परमेश्वर को इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सके या जान सके हैं। वे परमब्रह्म पुरुषोत्तम दूसरे दौड़ने वालों को स्वयं स्थित रहते हुए ही अतिक्रमण कर जाते हैं। उनके होने पर ही उन्हीं की सत्ताशक्ति से वायु आदि देवता जलवर्षा, जीव की प्राणधारणादि क्रिया प्रभृति कर्म सम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326

सम्पादक–आचार्य ब्र० (डा.) दासलाल शर्मा